अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-23, 16-31 जुलाई, 2018

दो मस्जिदें : पं. जवाहरलाल नेहरू

'... लेकिन वे पत्थर और दीवारें खामोश हैं। उन्होंने इतवार की ईसाई पूजा बहुत देखीं और बहुत देखीं जुमे की नमाजें। अब हर दिन की नुमायश है उनके साए में! दुनिया बदलती रही, लेकिन वे कायम हैं। उनके घिसे हुए चेहरे पर कुछ हलकी मुसकुराहट-सी मालूम होती है, और धीमी आवाज-सी कानों में आती है–'इन्सान भी कितना बेवकूफ और जाहिल है कि वह हजारों वर्ष के तजुरबे से नहीं सीखता और बार-बार वही हिमाकतें करता है।'

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख्य-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 23, 16-31 जुलाई, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. बलात्कार राम से भी नहीं रुकेगा... 2
2. स्वयं को बदलने की आवश्यकता.... 3
3. जीवन-शोधन कैसे?... 4
4. देश का सबसे बड़ा बदमाश... 6
5. दो मस्जिदें... 8
6. प्रेम का उदय... 11
7. उपन्यास - 'बा'... 16
8. गतिविधियां एवं समाचार... 19
9. कविताएं... 20

संपादकीय

बलात्कार राम से भी नहीं रुकेगा

कुछ माह पूर्व जब सर्व सेवा संघ प्रकाशन कार्यालय में बैठा था, तो टेलीफोन की घंटी बजी। हमारे एक साथी ने उठाया तो पता चला कि यह टेलीफोन आरएसएस मुख्यालय, नागपुर से है और वे विनोबा रचित पुस्तक 'कार्यकर्ता पाथेय' क्रय करना चाहते हैं। मुझे बेहद खुशी हुई कि सर्वोदय के 'कार्यकर्ता पाथेय' की जरूरत उन्हें अपने कार्यकर्ताओं के निर्माण के लिए आ पड़ी है, वरना कोई बड़ी संख्या में यह पुस्तक क्यों क्रय करता?

जरा हम इस पतली-सी पुस्तक 'कार्यकर्ता पाथेय' की रचना जिन परिस्थितियों में हुई, उसे जान लें। यह पुस्तक विनोबा द्वारा भूदान कार्य से लौटे भूदान कार्यकर्ताओं के बीच सुबह-शाम उनके संवादों का संकलन है। तेलंगाना में हुई हिंसक घटनाओं के परिणामस्वरूप विनोबा को तेलंगाना के पोचमपल्ली में जो प्रथम भूमि-दान प्राप्त हुआ, उस रात विनोबा को नींद नहीं आयी। चिन्तन के दौरान भीतर से आवाज आयी—"तू अगर इस काम में नहीं पड़ेगा, तो अहिंसा निकम्मी साबित होगी। फिर या तो तुझे काम छोड़कर हिमालय जाना होगा या कम्यूनिस्टों का क्रिड (सिद्धांत) स्वीकार करना होगा। दोनों में से एक भी नहीं करेगा तो कैसे चलेगा।"

विनोबा ने कार्यकर्ताओं की ताकत बढ़ाने के लिए आंतरिक संबंध बनाने की आवश्यकता महसूस की और बाद में इसी क्रम में उनके ही विचारों से जो प्रेरक और कल्याणप्रद पाथेय उपस्थित हुए, का संकलन 'कार्यकर्ता पाथेय' है, जिसमें अहिंसक क्रांति के सारे मूलतत्त्व समाविष्ट हैं। स्वाभाविक रूप से जो लोग अहिंसक समाज की रचना के लिए उत्सुक हैं या होंगे, उनके लिए यह उत्तम मार्गदर्शन है। दरअसल बंगाल में श्रीमती आशा देवी आर्यनायकम् के प्रस्ताव को विनोबा ने मानकर 4 जनवरी 1955 से कार्यकर्ताओं का वर्ग चलाना प्रारंभ किया था।

इसलिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ कार्यालय द्वारा भारी मात्रा में इस पुस्तक को क्रय करने की सूचना से मुझे आंतरिक खुशी हुई कि संघ बदलाव की ओर है। ऐसी खुशी; पहले जेपी और संघ के बीच हुए संवाद से मिली थी।

इस खुशी को काफूर होते समय नहीं लगा, जब एक-दो दिन पूर्व उत्तर प्रदेश के भाजपा या संघ के विधायक ने बलात्कार की घटनाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "प्रभु राम भी यहां आ जायेंगे तो वे बलात्कार रोक नहीं सकेंगे।" स्पष्टतः यह जो करोड़ों लोगों की आस्था मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति है, उसे ठेस पहुंचाना है।

राम को गांधी ने अपना सर्वस्व कहा—"मेरे न मां है, न बाप है और न भाई, ऐसा आश्रयविहीन हूं मैं। मेरे तो राम ही सर्वस्व हैं। मैं तो उसी के जिलाये जी रहा हूं। सारी स्त्री जाति में मुझे वही दृष्टिगोचर होता है, इसलिए मैं सभी स्त्रियों को मां या बहन के बराबर मानता हूं। मैं सभी पुरुषों में भी उसी को देखता हूं। इसलिए सबको अवस्था के अनुसार पिता, भाई या पुत्र की तरह मानता हूं। मैं उसी राम को हरिजन और ब्राह्मण में देखता हूं, इसलिए दोनों का अभिवादन करता हूं।"

दरअसल भोग और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले व्यक्ति व्यवसायाकुता बुद्धि वाले हो ही नहीं सकते। जिसका चित्त पूर्णतः निर्मल न हुआ हो, जिसका अंतर विकसित नहीं हुआ हो, जाग्रत न हुआ हो और हृदय दर्पण की तरह स्वच्छ न हो गया हो, उसको राम का साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। भारत की सभ्यता तो सदा ईश्वर को मानने वाली, अपार श्रद्धा रखने वाली रही है। सभी धर्मों ने भगवान को मुक्त रूप से 'निर्बल का बल' कहा है। हालांकि गांधी ने नारी को कभी अबला माना ही नहीं। इसलिए गांधी ने नारी जीवन को आत्मबल का आह्वान कहा और अहिंसा को उन्होंने स्त्री के स्वरक्षण का सशक्त हथियार कहा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम और सबके रखवाले राम की शक्ति को जो झुठलाता है, उससे राम मंदिर निर्माण की क्या कल्पना की जाय? उनकी शक्ति को नकारने का साफ मतलब है संपूर्ण ईश्वरीय सत्ता को नकारना और ऐसे लोगों के कारण ही लोगों में निराशा व्याप्त होती है और अनीति का प्रसार होता है। ऐसे विचारवान लोगों में राम मंदिर बनाने और रामराज्य स्थापित करने के पीछे आखिर क्या प्रेरणा काम कर सकती है? अगर यही बात गैर-भाजपाई बोलता तो पता नहीं क्या हालत होती?

ऐसे लोगों को समझना चाहिए अगर स्वराज्य या रामराज्य का अर्थ हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यता को शुद्ध तथा मजबूत बनाना न हो तो वह किसी कीमत का नहीं होगा। सच्ची लोकसत्ता या लोकस्वराज्य कभी भी असत्य मत और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता, यह हमें गांठ बांध लेनी चाहिए। **–अशोक मोती**

स्वयं को बदलने की आवश्यकता

❑ गांधी

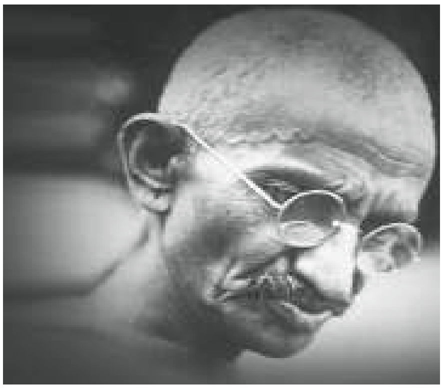

लोकमान्य ने हमें अपना संदेश चार सीधे-सादे शब्दों में दिया था। लेकिन आज भी ऐसे लोग हैं, जिन्हें इस सिद्धांत में शंका है कि स्वराज्य उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है; उसी प्रकार जिस प्रकार कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व में शंका करते हैं। अतः स्वराज्य आंदोलन हमें इस बात की प्रतीति कराने का आंदोलन है कि स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। स्वयं को बदलने की आवश्यकता का स्मरण दिलाने वाली बहुत-सी चीजें हमारे पहले ही मौजूद हैं, लेकिन नील की प्रतिमा-संबंधी सत्याग्रह पर, मद्रास विधान परिषद में हुई बहस, मानो हमारी आंख में अंगुली डालकर, हमें इस आवश्यकता की याद दिलाती है। इस विक्षोभकारी प्रतिमा को हटाने की मांग करने वाला निर्दोष प्रस्ताव भारी बहुमत से अस्वीकार कर दिया गया। कुछ निर्भीक लोगों को छोड़कर लगभग सभी भारतीय सदस्यों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध मत दिये। इस प्रस्ताव पर हुई बहस से स्वराज्यवादी मनोवृत्ति तथा अन्य सभी प्रकार की मनोवृत्तियों के बीच के प्रखर अंतर स्पष्ट हो गये। यह मतदान और बहस इस तथ्य का ताजा उदाहरण है कि स्वराज्य में जो विलंब हो रहा है, वह अंग्रेज 'शासकों' की हठधर्मिता के कारण उतना नहीं है, जितना कि इस कारण है कि हम अपने दर्जे को पहचानने और उसके लिए काम करने से इनकार करते हैं। नील की प्रतिमा को हटाने के लिए होने वाला यह आंदोलन, मेरी विनम्र राय में, हमारे लक्ष्य की दिशा में एक कदम है। मैं नील की प्रतिमा को अपनी गुलामी का प्रतीक मानता हूं, और राष्ट्रीय स्वाभिमान की मांग है कि इसे तथा ऐसे प्रत्येक प्रतीक को हटा दिया जाये। यह आंदोलन इस तथ्य के कारण और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इसका लक्ष्य कोई भौतिक लाभ प्राप्त करना नहीं है। जब करोड़ों भारतीय केवल स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक होकर, अपने को बलिदान करने को तैयार हो जायेंगे तो स्वराज्य आसानी से प्राप्त किया जा सकेगा। यूनियन जैक का अपमान होने पर कोई अंग्रेज व्यक्तिगत तौर पर अपमानित क्यों अनुभव करता है और इस अपमान के विरुद्ध रोष प्रकट करने की कोशिश में वह किसलिए अपनी जान भी दे देगा? यह कोई ऐसी भावना नहीं है, जिसका तिरस्कार किया जाये या जिसे दबाया जाये। अपने झंडे का अपमान होने पर क्रोध व्यक्त करने के लिए वह जो तरीका अपनाता है, वह निःसंदेह अक्सर बर्बर तरीका होता है, लेकिन यदि वह इस भावना को छोड़ दे, तो वह अपनी राष्ट्रीय एकता और जिस राष्ट्र का वह सदस्य है, उस राष्ट्र के लिए अपने-आपको उत्सर्ग कर देने की शक्ति खो बैठेगा। इसी प्रकार यदि हमें अपने जन्म-सिद्ध अधिकार की प्रतीति होती तो हमारे लिए यह जानना गर्व की बात होती कि ऐसे भी नवयुवक हैं, जिन्हें हमारे बीच एक ऐसी प्रतिमा के होने पर एतराज है, जिसका होना राष्ट्र के लिए अपमानजनक है। बहस में भाग लेने वाले कई भारतीय सदस्यों ने ऐसी प्रतीति या गर्व का कोई परिचय नहीं दिया। उनके लिए राष्ट्र की लड़ाई लड़ने वाले ये नौजवान अज्ञानी व्यक्ति हैं, जिनका आचरण केवल निन्दा के योग्य ही है। उन्हें (नील की) प्रतिमा के एक ऐसे प्रमुख सार्वजनिक स्थल पर मौजूद रहने में कोई बुराई नहीं नजर आती, जहां केवल उन राष्ट्रीय नायकों की प्रतिमाएं होनी चाहिए, जिनका जीवन राष्ट्र को अनुप्रेरित करेगा और उदात्त बनायेगा।

यह बात बहुत स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है कि यह सत्याग्रह व्यक्तिगत रूप से जनरल नील के विरुद्ध नहीं है। 'आतंक' के साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से यदि जनरल नील की जगह जनरल वीरसिंह की प्रतिमा खड़ी हो गयी होती तो भी वह सत्याग्रह उतना ही उचित और आवश्यक होता।

बहस के दौरान यूरोपीयनों की ओर से प्रतिमा का एक बचाव पेश किया गया था। उसे काफी सावधानी के साथ, संयत और युक्तियुक्त शब्दों में रखा गया था। तथापि उससे यूरोपीय मनोवृत्ति झलकती थी। जनरल नील जिस चीज के प्रतीक थे, वह साम्राज्य को बचाने के लिए आवश्यक थी। और जनरल नील के दुष्कृत्यों को ढंकने के लिए उनका बचाव करने वाले के लिए यह जरूरी हो गया कि वह 'द अदर साइड ऑफ द मेडल' ('तसवीर का दूसरा पहलू') के लेखक श्री टॉमसन को पागल करार दे दें और एक घिनौना अभिनंदन पत्र कहीं से खोज निकालें, जिसे गदर के दो वर्ष बाद, मद्रास के 110 हिन्दुओं ने, जनरल नील की रेजीमेंट को प्रदान किया था। जिन परिस्थितियों में यह अभिनंदन पत्र दिया गया था, उनका पता चलाने का मेरे पास कोई तरीका नहीं है, लेकिन मुझे इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं लगती कि ऐसा एक अभिनंदन पत्र भेंट किया गया; क्योंकि हाल की घटनाओं में से भी ऐसे दृष्टांत दिये जा सकते हैं। क्या जनरल डायर को स्वयं अमृतसर में

ही इसी प्रकार का एक अभिनंदन पत्र नहीं भेंट किया गया था? और यह आश्चर्य की बात होगी कि यदि आज भी सर माइकेल ओ डायर भारत लौटें और अच्छे शासन के हित में जरूरी समझा जाये तो उन्हें एक अभिनंदन पत्र भेंट करने के लिए 110 भारतीय न मिलें। क्या हमारे ही समय में अत्यंत अलोकप्रिय वाइसरायों को भी अभिनंदन पत्र और ट्राफियां नहीं प्राप्त हुई हैं?

यह बड़े दुःख की बात है कि अंग्रेज लोग भारतीयों की उन भावनाओं की सराहना करने लगे हैं, जिन्हें यदि कोई अंग्रेज व्यक्त करें तो वे स्वयं शर्मिन्दा होंगे। मुझे याद है कि एक सम्मेलन में राजभक्ति से संबंधित एक प्रस्ताव पर बोलते हुए एक विद्वान भारतीय ने यह कहा कि वे प्रत्येक अंग्रेज को अपना शिक्षक मानते हैं और वे जो-कुछ हैं, सब ब्रिटेन की दया से ही बने हैं, तो एक गवर्नर की पत्नी ने सबसे पहले जोर से तालियां बजायीं थीं। मद्रास में जो-कुछ हुआ, वह कुछ इसी ढंग की चीज थी और इससे मुझे दुःख हुआ।

लेकिन मद्रास विधान परिषद में जो विपरीत फैसला हुआ, उससे आतंकवाद के प्रतीकों के विरुद्ध, संघर्ष करने वाले नवयुवकों को, निरूत्साह नहीं होना चाहिए। उन्हें आंदोलन का इस समय विरोध करने वाले अंग्रेजों या भारतीयों के विरुद्ध क्रोध नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने-आप में और अपने उद्देश्य में विश्वास होना चाहिए। यदि उनका यह विश्वास बना रहा तो वे एक दिन उन्हीं लोगों को अपनी ओर कर लेंगे। ❑

तकनीकी भूल

सर्वोदय जगत वर्ष 41, अंक 21 (16-30 जून, 2018) में अंदर के पृष्ठों पर कम्प्यूटर की तकनीकी भूल के कारण अंक 20 का मैटर प्रकाशित हो गया है। पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें खेद है। **–सं.**

जीवन-शोधन कैसे?

❑ **किशोरभाई मशरूवाला**

कितने ही ऐसे उदात्त भावना रखने वाले युवकों की व खुद मेरी एक समय की मनोदशा का अवलोकन करते हुए मैंने अनुभव किया कि हममें से बहुतेरों के चित्त पर गलत आदर्शों ने, या सही आदर्श की गलत कल्पना ने, अथवा भ्रमपूर्ण तत्त्ववादों ने या योग्य तत्त्ववाद की भ्रमपूर्ण समझ ने अपनी छाप बिठा रखी है। यह छाप इतनी गहरी बैठ जाती है कि जब मनुष्य पूरी जवानी की बहार में होता है और अपने तथा समाज के कल्याण के लिए पूरा-पूरा पुरुषार्थ करने की क्षमता रखता है, ठीक उसी वक्त उसके कर्तृत्व की गाड़ी एकाएक अटक जाती है, अथवा निष्फल मार्ग की ओर चल पड़ती है।

''लोगो, मैं जो-कुछ कहूं वह परंपरागत है, इसलिए सच मत मानना। तुम्हारी पूर्व परंपरा के अनुसार है, इसलिए सच मत मानना। ऐसा ही होगा, ऐसा मानकर सच मत मानना। तर्कसिद्ध है, ऐसा समझकर सच मत मानना। लौकिक न्याय है, ऐसा जानकर सच मत मानना। सुंदर लगता है, ऐसा समझकर सच मत मानना। तुम्हारी श्रद्धा का पोषक है, इसलिए सच मत मानना। मैं प्रसिद्ध साधु हूं, पूज्य हूं, ऐसा मानकर सच मत समझना। परंतु यदि तुम्हारी विवेक-बुद्धि को मेरा उपदेश सच मालूम हो, तो ही उसको स्वीकार करना।'' **–बुद्ध**

परंतु पाठकगण, इसके साथ ही, मैं जो-कुछ कहूंगा वह परंपरागत नहीं है, इसीलिए उसे झूठ मत मानना। आपकी पूर्व परंपरा में उलटफेर कर देने वाला है, इसीलिए उसे त्याज्य मत समझ लेना। आपके चित्त को आकर्षक लग जाय, इतना सुंदर या सहज नहीं दिखता, इसीलिए उसे गलत मत मान लेना। आपकी चिरकालीन पोषित दृढ़ श्रद्धा को डिगा देने वाला है, इसीलिए आपको उलटे रास्ते ले जाने वाला है, ऐसा मत समझ लेना। मैं कोई सिद्ध, तपस्वी, योगी या श्रोत्रिय नहीं हूं, महज इसी कारण से मेरा कहना गलत मत मान लेना। परंतु साथ ही यदि आपकी विवेक-बुद्धि को मेरे विचार सत्य और उन्नतिकर दिखायी दें, जीवन-व्यवहार में वह पुरुषार्थ उत्साह-प्रेरक, प्रसन्नता-उत्पादक और आपके तथा समाज के लिए श्रेय-वर्धक मालूम हों, तो उन्हें डंके की चोट पर स्वीकार करने में डरना भी मत।

'जिन्दगी खा-पीकर ऐशआराम करने के लिए है'—इससे अधिक उदात्त भावना का स्पर्श ही जिन्हें नहीं हो सकता, उनके लिए मुझे कुछ नहीं कहना है। परंतु जिनके मन में उदात्त भावनाएं हैं, कभी-कभी वे प्रबल भी हो उठती हैं, जिनके मन में यह अभिलाषा रहती है अथवा रह-रहकर जोर मारती है कि मेरी आध्यात्मिक उन्नति हो, मैं जीवन के तत्त्व को समझ लूं, मेरा चित्त निर्मल हो जाय, मेरा जीवन दूसरों का सुख बढ़ाने में किसी कदर उपयोगी हो जाय, मेरे जन्म के समय जो स्थिति मेरे समाज की थी, उससे वह अभ्युदय के मार्ग में आगे बढ़े, और उसमें मेरा कुछ-न-कुछ हिस्सा हो, उनके लिए सहायक होने की इच्छा से यह लेखमाला लिखने के लिए मैं प्रेरित हुआ हूं।

कितने ही ऐसे उदात्त भावना रखने वाले युवकों की व खुद मेरी एक समय की मनोदशा का अवलोकन करते हुए मैंने अनुभव किया कि हममें से बहुतेरों के चित्त पर गलत आदर्शों ने, या सही आदर्श की गलत कल्पना ने, अथवा भ्रमपूर्ण तत्त्ववादों ने या योग्य तत्त्ववाद की भ्रमपूर्ण समझ ने अपनी छाप बिठा रखी है। यह छाप इतनी गहरी बैठ जाती है कि जब मनुष्य पूरी जवानी की बहार में होता है और अपने तथा समाज के कल्याण के लिए पूरा-पूरा पुरुषार्थ करने की क्षमता रखता है, ठीक उसी वक्त उसके कर्तृत्व की गाड़ी एकाएक अटक जाती है,

अथवा निष्फल मार्ग की ओर चल पड़ती है। और मानो अपनी समाज-सेवा की भावना ही एक पाप हो, ऐसा ख्याल करते हुए वह उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए अधीर होता हुआ मालूम पड़ता है। जिस समय अविरत कर्म में ही उसकी सब शक्तियां लगनी चाहिए, उसी समय वह जीवन क्षेत्र से पीछा छुड़ाने व कर्म से मुंह छिपाने का प्रयत्न करता दिखायी देता है।

मैंने सखेद देखा है कि इसमें जीवन-विषयक, जीवन की सिद्धि-विषयक, और जीवन के ध्येय-विषयक तरह-तरह की कल्पनाएं व संस्कार कारणीभूत होते हैं। ये संस्कार हमारे चित्त पर इतने दृढ़ हो गये होते हैं, और विशेष दृढ़ बनाने के लिए पूज्य माने गये पुरुषों द्वारा इतना प्रयत्न किया होता है कि उनमें रही भूल को भूल मानने की हिम्मत भी हमारी बुद्धि को नहीं होती। फिर भी, मुझे ऐसी प्रतीति हुई है कि जो व्यक्ति केवल कल्पनाशक्ति श्रद्धा पर आधार नहीं रखते, बल्कि स्वतंत्र रूप से अनुभव में आने वाले बुद्धिगम्य श्रेय को साधने की इच्छा रखते हैं, उन्हें भरसक जल्दी इस भूल-भ्रम से छूटना ही जरूरी है। अतः मैंने कई एक प्राचीन मतों को, जितना हो सकता है, सफाई के साथ समझाने का व शोधने का प्रयत्न किया है।

मैं यह नहीं मानता कि आर्य तत्त्व-ज्ञान की इमारत परिपूर्णता के साथ रची जा चुकी है, इसमें अब कुछ भी खोज-सुधार या शुद्धि-वृद्धि की गुंजाइश नहीं, अब तो सिर्फ प्राचीन शास्त्रों को जुदा-जुदा भाष्यों द्वारा या नये भाष्य रचकर समझाते रहना ही बाकी रहा है। मेरी राय में नवीन अनुभवों और नवीन विज्ञान की दृष्टि से पुरानी बातों को सुधारने, घटाने-बढ़ाने व जहां आवश्यकता हो, भिन्न-भिन्न मत बांधने का अधिकार आर्वाचीनों का है। इस अधिकार को छोड़ देने से हिन्दुस्तान 'अचलायतन' हो रहा है। मेरा मत है कि बादरायण के काल से तत्त्वज्ञान का विकास प्रायः रुक गया है। उन्होंने पुराने ज्ञान को सूत्रबद्ध करके तत्त्व-ज्ञान का दरवाजा बंद कर दिया और शंकराचार्य तथा बाद के आचार्यों ने उस पर ताले जड़ दिये। अब उन तालों को तोड़े बिना गति नहीं है।

मेरी समझ से नवीन सांख्य के लिए गुंजाइश है, योग पर फिर से विचार करने की जरूरत है, और वेदांत के भी प्रतिपादन में शुद्धि हो सकती है। इसके फल-स्वरूप यदि ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग या योगमार्ग में फर्क होने लगे, तो ऐसा होने देना जरूरी है।

यदि यह पुस्तक आर्यो के अथवा संसार के तत्त्वज्ञान की बुद्धि में थोड़ा भी योग दे सके और श्रेयार्थी के लिए कुछ भी उपयोगी हो सके, तो बस है। मेरा यह दावा नहीं है कि इस पुस्तक के द्वारा तत्त्वज्ञान की पूर्णता हो जायेगी। वर्तमान अथवा भावी विचारक इसमें और शुद्धि-वृद्धि करें।

मेरी दृष्टि में तत्त्वज्ञान कोरे बौद्धिक विलास का विषय नहीं है। बल्कि हमें उसके आधार पर अपना जीवन रचना है। अतएव इन मान्यताओं का जीवन के साथ कोई संबंध नहीं, उनकी चर्चा में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। कोरी बुद्धि की कसरत के तौर पर तत्त्वज्ञान की चर्चा करने की मुझे इच्छा नहीं। अतः इस पुस्तक में मैंने जो कुछ खंडन-मंडन करने का यत्न किया है, वह जीवन को बदलने की दृष्टि से है; केवल मान्यता को बदलने की दृष्टि से नहीं।

संभव है किसी को ये लेख धृष्टता-पूर्ण, किसी को आघात पहुंचाने वाले, व किसी को ऐसे लगे मानो मैं हिन्दूधर्म की विशिष्टता का उच्छेद करना चाहता हूं। परंतु इसके लिए मैं इतना ही कह सकता हूं कि इन लेखों के लिखने में मेरी वृत्ति तो भरसक भक्ति-भाव की (मेरी दृष्टि से), अमूल्य कर्तृत्व की व्यर्थ जाते देखकर होने वाले दुःख-भाव की और सत्योपासना रही है।

यह भी संभव है कि इन लेखों के कोई-कोई वचन सांप्रदायिक अनुयायियों को अपने इष्टदेव, गुरु या दूसरे पूज्य जनों के प्रति अरुचिकर टीका करने वाले मालूम हों। परंतु वे विश्वास रखें कि इनमें मेरा आशय किसी का अपमान या निन्दा करने का नहीं है, न किसी पवित्र पुरुष का निरादर करने का ही है। लेकिन मैंने जो कुछ लिखा है, वह इसीलिए कि जो कुछ मुझे भूल या भ्रम-युक्त मालूम होता है, उसे वैसा साफ-साफ न कहूं, तो मेरा सारा कथन ही निरर्थक हो जायेगा।

फिर भी यदि किन्हीं साम्प्रदायिक लोगों का रोष-पात्र मैं हो ही जाऊं, तो भी मुझे आशा है कि उस रोष की पहली बाढ़ उतर जाने के बाद बहुतों को ऐसा लगेगा कि मैंने रोष करने लायक कुछ नहीं किया है, और धीरे-धीरे मेरी बात उन्हें पटने लगेगी।

जब पुरानी श्रद्धाओं और संस्कारों-संबंधी भूलों के प्रति पहली बार ध्यान आता है, तो यह स्वाभाविक है कि गहरा आघात लगे। जब अपने आप हमारा ध्यान उसकी तरफ जाता है, तो कई बार हम निराशा की धारा में बहने लगते हैं और यदि दूसरों के द्वारा ऐसा होता है, तो शंका या रोष के बवंडर में पड़ जाते हैं। परंतु निःस्वार्थी व विचारशील व्यक्ति की वह निराशा, शंका या रोष थोड़े ही समय में शांत हो जाता है व उसका मार्ग उज्ज्वल हो जाता है।

संसार के सब अनुगमों (अर्थात् हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मो) को कितने ही विषयों में ऐसा आघात सहन किये बिना छुटकारा नहीं है। हिन्दू-अनुगम इसके अपवाद नहीं हैं। यदि ऐसे आघात उचित रूप से पहुंचाने में मैं निमित्तभागी बनूं, तो इसका मुझे रंज नहीं। क्योंकि मुझे विश्वास है कि इन आघातों के असर को मंजूर कर लेने से धर्म-भावना अधिक स्पष्ट व उज्ज्वल होगी।

इन लेखों में जितना सत्य, विवेकबुद्धि से ग्रहण करने योग्य व पवित्र प्रयत्नों का पोषक हो, उतना ही जीवित रहे; जो अधिक अनुभव या विचार से भ्रमपूर्ण या पवित्र प्रयत्नों के लिए हानिकार मालूम हो, उसका निरादर व नाश हो—यही मेरी कामना है।

आशा है कि पाठक लेखारम्भ में की गयी मेरी विनती पर ध्यान देकर इस पुस्तक में प्रदर्शित विचारों के तथ्यातथ्य की जांच करेंगे। ❑

देश का सबसे बड़ा बदमाश

❑ श्रीपाद जोशी

पहली अक्टूबर, सन् 1939 के दिन मैं हिन्दी-उर्दू के विशेष अध्ययन के लिए ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस द्वारा वर्धा से दिल्ली जाने वाला था। उसी गाड़ी में पास के ही तीसरे दर्जे के डिब्बे में गांधीजी और उनकी पार्टी के लोग थे। मुझे विदा करने के लिए श्री अमृतलाल नाणावटी स्टेशन आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि पास वाले डिब्बे में बापूजी और उनकी मंडली है। आपको किसी चीज की जरूरत लगे तो आप उनसे कह सकते हैं। चाहें तो आप जाकर उनके डिब्बे में भी बैठ सकते हैं। मैंने उन लोगों को आपके बारे में बता दिया है।

परंतु गांधीजी के डिब्बे में जाने की कोई जरूरत मुझे महसूस नहीं हुई। वैसे इच्छा भी नहीं हुई। तब तक गांधीजी को मैंने कई बार निकट से देखा जरूर था, पर उनके निकट का तो था नहीं मैं। किसी विशेष काम के बगैर उन्हें अपना परिचय देना मुझे अच्छा नहीं लगता था। इसलिए अब ऐसा मौका मिलने पर भी मैं उनके डिब्बे में नहीं गया।

उन दिनों गाड़ियों में बिलकुल भीड़ नहीं रहती थी। मेरे डिब्बे में काफी जगह थी। मैंने वर्धा में अपना जो बिस्तर बिछाया था, वह दिल्ली पहुंचने के बाद ही लपेटा था। उसकी तुलना में गांधीजी के डिब्बे में आदमी और सामान कुछ अधिक था, जिससे वहां कुछ भीड़ ही थी। इसलिए भी उनके डिब्बे में जाने की इच्छा मुझे नहीं हुई। और अगर मैं जाता भी तो मुझसे बातें करने के लिए वहां किसके पास फुरसत थी? गांधीजी समेत सभी तो अपने-अपने काम में लगे हुए थे।

गांधीजी ने देश की जनता के हृदय पर कितना बड़ा काबू पा लिया था, इसका कुछ अनुभव मुझे चौबीस घंटों की उस यात्रा में हुआ। हर स्टेशन पर हजारों की तादाद में लोग उनके दर्शन के लिए जमा होते और उनकी जय जयकार से स्टेशन गूंज उठता। उनकी मंडली के सामने यह सवाल भी था कि उस शोरगुल से बापूजी की रक्षा कैसे की जाये। फिर गांधीजी अपने हाथ फैलाकर हरिजन-निधि के लिए पैसा भी मांगते थे। श्री कनु गांधी आदि भी थालियां और कटोरे फैलाकर पैसे ले लेते थे। अकेले गांधीजी पांच-दस मिनट के समय में कितने लोगों से पैसे ले सकते थे। जब गाड़ी चलने लगती तो मिले हुए पैसे गिनकर रख लिए जाते थे। दिन भर तो यह सब ठीक था; पर रात को भी नींद हराम करने वाला वह कोलाहल चलता ही रहा। मगर गांधीजी का जनता-प्रेम इतना अद्भुत था कि उन्होंने अपनी तरफ से उसके खिलाफ कोई क्रोध या नाराजगी प्रकट नहीं की।

आज मुझे ऐसा लगता है कि दान लेने के उस काम में मैं उस मंडली की मदद कर सकता था और उससे उनके साथ मेरा परिचय भी बढ़ जाता। मगर उस वक्त यह बात मुझे नहीं सूझी। हो सकता है, उस वक्त की संकोचशील उम्र के लिए वही स्वाभाविक भी रहा हो।

इस दिल्ली-यात्रा में एक और उल्लेखनीय घटना घटी थी। वैसे उसे स्मरणीय नहीं कहा जा सकता, पर उसका संबंध गांधीजी से था, इसलिए उसका उल्लेख यहां किया जा रहा है।

दोपहर को बारह बजे के करीब गाड़ी का क्रॉसिंग हुआ और दिल्ली से आयी हुई गाड़ी से एक युवक उतर कर जल्दी-जल्दी हमारे डिब्बे में चढ़ गया। उसके पास कोई सामान नहीं था। मेरी सामने वाली बेंच खाली थी, इसलिए वह उसी पर बैठ गया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह आदमी अभी तो दिल्ली की गाड़ी से उतरा है और फिर दिल्ली जाने वाली गाड़ी में बैठ गया! भला शौक के खातिर इधर-उधर जाने के लिए क्या यह बंबई की ट्राम है?

मैंने उसे गौर से देखा। गोरा रंग, हृष्ट-पुष्ट शरीर, चौड़ा चिकना चेहरा, मोटी-मोटी पानीदार आंखें और बड़ा ही आकर्षक व्यक्तित्व! उम्र होगी कोई बीस के करीब। मैंने उत्सुकता से उससे पूछ ही लिया :

''क्यों साहब, कहां से आये हैं? और कहां तशरीफ ले जा रहे हैं?''

''तशरीफ तो साहब दिल्ली से लाए हैं और दिल्ली ही वापस ले जा रहे हैं।'' उसने जरा मजाकिया ढंग से उत्तर दिया। उसके उस ढंग से मुझे भी हंसी आ गयी।

उसके उच्चारण से ही मैं जान गया कि वह बंगाली है। उसके खुशमिजाज स्वभाव मुझे बहुत पसंद आया और थोड़ी ही देर में हम दोनों में गहरी दोस्ती हो गयी—जैसे किसी हिन्दी फिल्म में होती है!

उस युवक का नाम था रणजीत कुमार सील। कलकत्ता की फिल्मी दुनिया में प्रवेश पाने की असफल चेष्टा करके वह प्रवाह के साथ बहता हुआ दिल्ली जा पहुंचा था। वहां उसे एक गुरु मिल गये थे, जिनकी चरण-सेवा में वह लगा हुआ था। गुरुजी का नाम था श्री गोविन्ददास कौन्सुल। आगे चलकर मैंने उन सज्जन को दिल्ली में एक-दो बार देखा भी था; पर उनकी कोई विशेष जानकारी मुझे नहीं मिल सकी।

इन गोविन्दजी ने गांधीजी के जीवन की थोड़ी बहुत साधारण जानकारी देने वाली एक मामूली-सी पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी थी। उसका शीर्षक था : 'महात्मा गांधी : द ग्रेट रौग् ऑफ इंडिया'। यानी 'महात्मा गांधी : भारत का सबसे बड़ा बदमाश!' ऐसी तो थी किताब और उसके लेखक की इच्छा थी कि पुस्तक छपने पर इसकी एक प्रति गांधीजी को उनके जन्मदिन पर भेंट की जाये और इस विचित्र पुस्तक पर गांधीजी की राय, सम्मति भी प्राप्त की जाये। इसी काम के लिए रणजीत कुमार सेवाग्राम जा रहा था। जब उसे पता चला कि गांधीजी इसी गाड़ी से दिल्ली जा रहे हैं, तो वह वर्धा जाने वाली गाड़ी से उतर कर दिल्ली जा रही हमारी गाड़ी में आ गया था।

उस पुस्तक का नाम तो बड़ा विचित्र था ही, पर उससे भी अधिक अजीब बात थी इस

पर गांधीजी की सम्मति प्राप्त करने की चेष्टा। मानो महात्मा गांधी की परीक्षा ली जा रही थी। वैसे पुस्तक में कोई दम नहीं था। बस अजीबोगरीब नाम रखकर उसे भड़कीला बनाने की कोशिश की गयी थी। पुस्तक गांधीजी को ही समर्पित थी : समर्पण वाले पन्ने पर अंग्रेजी में लिखा था : टू मोहनदास करमचंद गांधी, द अपॉस्ल् ऑफ ट्रूथ एंड स्पांसर ऑफ अहिंसा, विद द मोस्ट प्रोफाउंड फीलिंग्स ऑफ लव एंड वेनेरेशन बॉई गोविन्दास कौन्सुल। यानी गोविन्दास कौन्सुल द्वारा सत्य के देवदूत और अहिंसा के प्रवर्तक मोहनदास करमचन्द गांधी को अत्यन्त प्रेम एवं श्रद्धा के साथ समर्पित।

मैंने पुस्तक देखकर रणजीत से कहा, ''भैया, पुस्तक का नाम कुछ शिष्टतापूर्ण रखते तो भला क्या बिगड़ता?''

रणजीत ने सफाई पेश करते हुए कहा, ''आप नहीं जानते जोशीजी, अंग्रेजी शब्द रौग् का 'बदमाश' 'आवारा', 'ठग' आदि के अलावा और भी एक अर्थ है। वह है, अपने झुंड से बिलगाया हुआ हाथी। फिर किसी के प्रति अपने प्यार को प्रकट करने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है—इसी अर्थ में मेरे गुरुजी ने इस शब्द का प्रयोग किया है।''

अंग्रेजी भाषा की मेरी जानकारी बहुत सीमित थी। इसलिए मैं चुप हो गया। फिर भी वह नाम मुझे कुछ खराब ही लग रहा था। शायद कानों को आदत न होने के कारण वैसा हो रहा हो!

अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तो रणजीत ने मुझसे कहा, ''आप भी चलिए न मेरे साथ। हम दोनों मिलकर गांधीजी को यह पुस्तक भेंट करेंगे।''

मुझे उसके भोलेपन पर हंसी आयी। मैंने उससे कहा, ''बड़ा शुभ कार्य करने जा रहे हो न! तुम्हारी और तुम्हारे गुरु की अशिष्टता में मैं भला क्यों हाथ बंटाऊं?''

वह खीझकर अकेला ही गांधीजी के डिब्बे में चला गया। अगले स्टेशन पर वापस हमारे डिब्बे में लौट आया। उसके चेहरे पर सफलता की खुशी झलक रही थी। मैं तो समझता था कि वह जरा-सा मुंह लेकर लौटेगा। पर वह तो जैसे फूला नहीं समा रहा था। मैंने आश्चर्य से पूछा, ''क्यों भई, काम हो गया?''

''क्यों नहीं होगा? मगर बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा मुझे। जब मैं गांधीजी के पास जाकर उन्हें पुस्तक देने लगा तो उनके पास बैठे हुए एक भारी भरकम सज्जन की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने पुस्तक का नाम देखा तो गुस्से से लाल-पीले हो गये। वे मेरे हाथ से पुस्तक छीन कर दूर कोने में फेंकने ही वाले थे कि इतने में गांधीजी का ध्यान उस तरफ गया और वे बोले, ''लाओ तो सही इधर, देखूं क्या है यह!'' वे सज्जन बोले, ''आप क्यों अपना वक्त बरबाद करते हैं? फिजूल की गाली-गलौज होगी। गांधीजी ने कहा, ''भले ही हो। गालियों से हमारा क्या बिगड़ता है? और पुस्तक हाथ में लेकर गांधीजी ने मुझसे पूछा, ''क्या चाहते हो तुम? मैंने गुरुजी का पत्र उन्हें दे दिया और कहा, ''इस पुस्तक के विषय में आपकी सम्मति चाहिए।'' उनके आसपास के लोग मुंह बाए मेरी तरफ देखते ही रह गये। गांधीजी ने पुस्तक के पन्ने उलट-पुलट कर थोड़ी देर तक उसे देखा और फिर हंसकर बोले, ''तुम्हारे गुरु को जो कुछ कहना था, वह तो उन्होंने कह दिया है। अब मैं उसमें क्या जोड़ सकता हूं?'' मैंने कहा, ''आपको जो भी कहना हो, सम्मति के रूप में ही लिख दें तो अच्छा होगा। इस पर गांधीजी ने कहा, ''अच्छी बात है। अभी लिख देता हूं।'' और उन्होंने यह सम्मति दे दी। कहकर रणजीत ने गांधीजी के हस्ताक्षरों में लिखित सम्मति मुझे दिखायी :

प्रिय मित्र, मैंने आपकी पुस्तक कोई पांच मिनट तक सरसरी तौर पर देखी है। इसके मुखपृष्ठ या मजमून के विरोध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। आपको पूरा अधिकार है कि जो पद्धति आपको अच्छी लगे, उसके द्वारा आप अपने विचारों को प्रकट करें।

भवदीय, मो. क. गांधी, 1 अक्टूबर, 1939। रेल में।

अब मैं क्या बोलता? उस महात्मा ने ही मेरा मुंह बंद कर दिया था। परंतु मेरे आश्चर्य का तब कोई ठिकाना नहीं रहा जब दिल्ली में एक दिन आकर रणजीत ने गांधीजी को सम्मति के साथ छपी हुई उस पुस्तक की एक प्रति मुझे दे दी। गांधीजी के हस्ताक्षरों वाले उस पत्र का ब्लॉक बनवाकर रणजीत ने अच्छे सफेद कागज पर उसे छपाया था और पुस्तक की प्रत्येक प्रति में उसे चिपका दिया था।

मेरी समझ में नहीं आया कि पाठकों की दृष्टि से उस सम्मति का क्या महत्त्व था। हां, वे उसे पढ़कर इतना अवश्य जान सकते थे कि महात्मा सचमुच महात्मा है। मगर पुस्तक के नाम की तरह इस सम्मति को भी लेखक महाशय ने पुस्तक की बिक्री और प्रचार का एक साधन मान लिया और उससे पूरा फायदा उठाने की चेष्टा की। मालूम नहीं, उसमें उन्हें कहां तक सफलता मिली होगी।

इस घटना के बाद रणजीत के साथ मेरी मित्रता बढ़ती गयी। उसके विचारों में भी परिवर्तन होता गया। यहां तक कि बाद में अपने गुरु को छोड़कर वह वर्धा गया और मगनवाड़ी के अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ में काम करने लगा। फिर वह खादीधारी भी हो गया और हमारे परिवार का ही एक अंग बन गया। उसके विवाह के बारे में स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज ने बड़ी दिलचस्पी ली थी। इस बात से यह भी पता चल सकता है कि उसका हमारे परिवार में क्या स्थान था।

कुछ बरस बाद एक दिन वह अचानक कहीं चला गया। जिस आकस्मिकता के साथ वह आया था, उसी आकस्मिकता के साथ वह न जाने कहां चला गया। फिर कभी उससे भेंट नहीं हो पायी। मगर उसके साथ गांधीजी की एक अमिट स्मृति जुड़ गयी थी।

जब कभी 'देश के सबसे बड़े बदमाश' की याद आती तो याद आ जाता रणजीत, उसके गुरु की किताब, किताब पर गांधीजी की सम्मति। उस दिन की रेलयात्रा का पूरा चित्र फिर से आंखों के सामने घूम जाता था। ❑

दो मस्जिदें

❑ जवाहरलाल नेहरू

नेहरूजी ने हिन्दुस्तान की समस्याओं के अलावा भी बहुत कुछ लिखा और कहा, ''आजकल के प्रश्नों की जड़ हमारे पिछले कामों में होती है। इसलिए मेरा ख्याल है कि शायद इसमें के पुराने लेख भी हमारी नई समस्या पर रोशनी डालें। दुनिया का या हिन्दुस्तान का भविष्य क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता। हर तरफ लड़ाई, क्रांति और हलचल हो रही है और सिर्फ एक बात सही मालूम होती है कि पुरानी दुनिया का अंत हम देख रहे हैं। नई दुनिया अभी पैदा नहीं हुई और हम बीच में टंगे हैं और बीच की मुसीबतें सब झेलते हैं। यह नई दुनिया अपने आपसे नहीं बन जावेगी। वह करोड़ों आदमियों के परिश्रम, बलिदान और कोशिश से ही बन सकती है। लेकिन मेहनत तो तब ही फल देती है जब सामने कोई ध्येय हो और जिस रास्ते पर चलना है, वह निश्चय हो। बगैर इसके जनता भूली-भटकी फिरती है।'' –सं.

आजकल अखबारों में लाहौर की शहीदगंज मस्जिद की प्रतिदिन कुछ-न-कुछ चर्चा होती है। शहर में काफी खलबली मची हुई है। दोनों तरफ मजहबी जोश दीखता है। एक-दूसरे पर हमले होते हैं, एक-दूसरे की बदनीयती की शिकायतें होती हैं, और बीच में एक पंच की तरह अंग्रेजी हुकूमत अपनी ताकत दिखलाती है। मुझे न तो वाकयात ही ठीक-ठीक मालूम हैं कि किसने यह सिलसिला पहले छेड़ा था, या किसकी गलती थी, और न इसकी जांच करने की मेरी कोई इच्छा ही है। इस तरह के धार्मिक जोश में मुझे बहुत दिलचस्पी भी नहीं है; लेकिन दिलचस्पी हो या न हो, पर जब वह दुर्भाग्य से पैदा हो जाये, तो उसका सामना करना ही पड़ता है। मैं सोचता था कि हम लोग इस देश में कितने पिछड़े हुए हैं कि अदना-अदना-सी बातों पर जान देने को उतारू हो जाते हैं, पर अपनी गुलामी और फाकेमस्ती सहने को तैयार रहते हैं।

इस मस्जिद से मेरा ध्यान भटक कर एक दूसरी मस्जिद की तरफ जा पहुंचा। वह एक बहुत प्रसिद्ध ऐतिहासिक मस्जिद है और करीब चौदह सौ वर्ष से उसकी तरफ लाखों-करोड़ों निगाहें देखती आयी हैं। वह इस्लाम से भी पुरानी है, और उसने अपनी इस लंबी जिन्दगी में न जाने कितनी बातें देखीं। उसके सामने बड़े-बड़े साम्राज्य गिरे, पुरानी सल्तनतों का नाश हुआ, धार्मिक परिवर्तन हुए। खामोशी से उसने यह सब देखा, और हर क्रांति और तबादले पर उसने अपनी भी पोशाक बदली। चौदह सौ वर्ष के तूफानों को एक आलीशान इमारत ने बरदाश्त किया; बारिश ने उसको धोया; हवा ने अपनी बाजुओं से उसको रगड़ा; मिट्टी ने उसके बाज हिस्सों को ढंका। बुजुर्गी और शान उसके एक-एक पत्थर से टपकती है। मालूम होता है, उसकी रग-रग और रेशे-रेशे में दुनिया भर का तजुर्बा इस डेढ़ हजार वर्ष ने भर दिया है। इतने लंबे जमाने तक प्रकृति के खेलों और तूफानों को बरदाश्त करना कठिन था; लेकिन उससे भी अधिक कठिन था मनुष्यों की हिमाकतों और बहशतों को सहना। पर उसने यह सहा। उसके पत्थरों की खामोश निगाहों के सामने साम्राज्य खड़े हुए और गिरे। मजहब उठे और बैठे; बड़े-से-बड़े बादशाह, खूबसूरत-से-खूबसूरत औरतें, लायक-से-लायक आदमी चमके और फिर अपना रास्ता नाप कर गायब हो गये। हर तरह की वीरता उन पत्थरों ने देखी और देखी हर प्रकार की नीचता और कमीनापन। बड़े और छोड़े, अच्छे और बुरे, सब आये और चल बसे; लेकिन वे पत्थर अभी कायम हैं। क्या सोचते होंगे वे पत्थर, जब वे आज भी अपनी ऊंचाई से मनुष्यों की भीड़ों को देखते होंगे—उनके बच्चों का खेल, उनके बड़ों की लड़ाई, फरेब और बेवकूफी? हजारों वर्षों में इन्होंने कितना कम सीखा! कितने दिन और लगेंगे कि इनको अक्ल और समझ आये?

समुद्र की एक पतली-सी बांह एशिया और यूरोप को वहां अलग करती है—एक चौड़ी नदी की भांति बासफोरस बहता है और दो दुनियाओं को जुदा करता है। उसके यूरोपियन किनारे की छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बाइजेंटियम की पुरानी बस्ती थी। बहुत दिनों से वह रोमन साम्राज्य में थी, जिसकी पूर्वी सरहद ईसा की शुरू की शताब्दियों में ईराक तक थी; लेकिन पूरब की ओर से इस साम्राज्य पर अकसर हमले होते थे। रोम की शक्ति कुछ कम हो रही थी, और वह अपनी दूर-दूर की सरहदों की ठीक तरह रक्षा नहीं कर सकता था। कभी पश्चिम और उत्तर में जर्मन बहशी (जैसा कि रोमन लोग उन्हें कहते थे।) चढ़ आते थे और उनको हटाना मुश्किल हो जाता तो कभी पूरब में ईराक की तरफ से या अरब से एशियाई लोग हमले करते और रोमन फौजों को हरा देते थे।

रोम के सम्राट कॉन्सटेण्टाइन ने यह फैसला किया कि अपनी राजधानी पूरब की ओर ले जाए, ताकि वह पूर्वी हमलों से साम्राज्य की रक्षा कर सके। उसने बासफोरस के सुंदर तट को चुना और बाइजेंटियम की छोटी पहाड़ियों पर एक विशाल नगर की स्थापना की। ईसा की चौथी सदी खतम होने

वाली थी, जब कान्सटेंटिलोपल (उर्फ कुस्तुन्तुनिया) का जन्म हुआ। इस नवीन प्रबंध से रोमन साम्राज्य पूरब में जरूर मजबूत हो गया; लेकिन अब पश्चिमी सरहद और भी दूर पड़ गयी। कुछ दिन बाद रोमन साम्राज्य के दो टुकड़े हो गये—एक पश्चिमी साम्राज्य और दूसरा पूर्वी साम्राज्य। कुछ वर्ष बाद पश्चिमी साम्राज्य को उसके दुश्मनों ने खत्म कर दिया; लेकिन पूर्वी साम्राज्य एक हजार वर्ष से अधिक और कायम रहा। और बाइजेन्टाइन साम्राज्य के नाम से प्रसिद्ध रहा।

सम्राट कॉन्सटेन्टाइन ने केवल राजधानी नहीं बदली; बल्कि उससे भी बड़ा एक परिवर्तन किया। उसने ईसाई धर्म स्वीकार किया। उसके पहले ईसाइयों पर रोम में बहुत सख्तियां होती थीं। जो उनमें से रोम के देवताओं को नहीं पूजता था, या सम्राट की मूर्ति का पूजन नहीं करता था, उसको मौत की सजा मिल सकती थी। अकसर उसे मैदान में भूखे शेरों के सामने फेंक दिया जाता था। यह रोम की जनता का एक बहुत प्रिय तमाशा था। रोम में ईसाई होना एक बहुत खतरे की बात थी। वे बागी समझे जाते थे। अब एकाएक जमीन-आसमान का फर्क हो गया। सम्राट स्वयं ईसाई हो गया, और ईसाई-धर्म सबसे अधिक आदरणीय समझा जाने लगा। अब बेचारे पुराने देवताओं को पूजने वाले मुश्किल में पड़ गये, और बाद के सम्राटों ने तो उनको बहुत सताया। केवल एक सम्राट फिर ऐसे हुए (जूलियन), जो ईसाई-धर्म को तिलांजलि देकर फिर देवताओं के उपासक बन गये; परंतु तब ईसाई-धर्म बहुत जोर पकड़ चुका था, इसलिए बेचारे रोम और ग्रीस के प्राचीन देवताओं को जंगल की शरण लेनी पड़ी, और वहां से भी वे धीरे-धीरे गायब हो गये।

इस पूर्वी रोमन साम्राज्य के केन्द्र कुस्तुन्तुनिया में सम्राटों की आज्ञा से बड़ी-बड़ी इमारतें बनीं, और बहुत जल्दी वह एक विशाल नगर हो गया। उस समय यूरोप में कोई भी दूसरा शहर उसका मुकाबिला नहीं कर सकता था—रोम भी बिलकुल पिछड़ गया था। वहां की इमारतें एक नई तर्ज की बनीं; एक नई भवन बनाने की कला का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें मेहराब, गुम्बज, बुर्जियां, खम्भे इत्यादि अपनी तर्ज के थे और जिसके अंदर खम्भों वगैरह पर बारीक मोजाइक (पच्चीकारी) का काम होता था। यह इमारती कला बाइजेन्टाइन कला के नाम से प्रसिद्ध है। छठी सदी में कुस्तुन्तुनिया में एक आलीशान कैथीड्रेल (बड़ा गिरजाघर) इस कला का बनाया गया, जो सांक्टा सोफिया या सेण्ट सोफिया के नाम से मशहूर हुआ।

पूर्वी रोमन साम्राज्य का यह सबसे बड़ा गिरजा था। सम्राटों की यह इच्छा थी कि वह बेमिसाल बने और अपनी शान और ऊंचे दर्जे की कला में साम्राज्य के योग्य हो। उनकी इच्छा पूरी हुई और यह गिरजा अब तक बाइजेंटाइन कला की सबसे बड़ी फतह समझा जाता है। बाद में ईसाई धर्म के दो टुकड़े हुए (हुए तो कई, लेकिन दो बड़े टुकड़ों का जिक्र है।) रोम और कुस्तुन्तुनिया में धार्मिक लड़ाई हुई। वे एक दूसरे से अलग हो गये। रोम का बिशप (बड़ा पादरी) पोप हो गया, और यूरोप के पश्चिमी देशों में बड़ा माना जाने लगा। लेकिन पूर्वी रोमन साम्राज्य ने उसको नहीं माना। वहां का ईसाई फिरका अलग हो गया। यह फिरका ऑर्थोडाक्स चर्च रूस और उसके आसपास भी फैला था।

सेंट सोफिया का केथीड्रेल ग्रीक चर्च (धर्म) का केन्द्र था और नौ सौ वर्ष तक वह ऐसा ही रहा। बीच में एक दफे रोम के पक्षपाती ईसाई (जो आये थे मुसलमानों से क्रूसेड्स—जेहाद-लड़ने) कुस्तुन्तुनिया पर टूट पड़े और उस पर उन्होंने कब्जा भी कर लिया; लेकिन वे जल्दी ही निकाल दिये गये।

आखिर में जब पूर्वी रोमन साम्राज्य एक हजार वर्ष से अधिक चल चुका था और सेंट सोफिया की अवस्था भी लगभग नौ सौ वर्ष की हो रही थी, तब एक नया हमला हुआ, जिसने उस पुराने साम्राज्य का अंत कर दिया। पंद्रहवीं सदी में ओस्मानली तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर फतह पायी। नतीजा यह हुआ कि वहां का जो सबसे बड़ा ईसाई केथीड्रेल था, वह अब सबसे बड़ी मस्जिद हो गयी। सेंटसोफिया का नाम आया सुफीया हो गया। उसकी यह नई जिन्दगी भी लंबी निकली—सैकड़ों वर्षों की। एक तरह से वह आलीशान मस्जिद एक ऐसी निशानी बन गयी, जिस पर दूर-दूर से निगाहें आकर टकराती थीं और बड़े-बड़े मनसूबे गांठती थीं। उन्नीसवीं सदी में तुर्की साम्राज्य कमजोर हो रहा था, और रूस बढ़ रहा था। रूस इतना बड़ा देश होते हुए भी एक बंद देश था। उसके साम्राज्य भर में कोई ऐसा खुला बंदरगाह नहीं था, जो सर्दियों में बर्फ से खाली रहे और काम आ सके, इसलिए वह कुस्तुन्तुनिया की ओर लोभ भरी आंखों से देखता था। इससे भी अधिक आकर्षण आध्यात्मिक और सांस्कृतिक था। रूस के जार (सम्राट) अपने को पूर्वी रोमन सम्राटों के वारिस समझते थे, और उनकी पुरानी राजधानी को अपने कब्जे में लाना चाहते थे। दोनों का मजहब वही ऑर्थोडॉक्स ग्रीक चर्च था, जिसका नामी गिरजा सेंट सोफिया था। रूस को यह असह्य था कि उसके धर्म का सबसे पुराना और प्रतिष्ठित गिरजा मस्जिद बना रहे। उसके ऊपर जो इस्लाम की निशानी हिलाल या अर्द्ध-चन्द्र था, उसके बजाय ग्रीक क्रास होना चाहिए।

धीरे-धीरे उन्नीसवीं सदी में जारों का रूस कुस्तुन्तुनिया की ओर बढ़ता गया। जब करीब आने लगा, तब यूरोप की और शक्तियां घबराईं। इंग्लैंड और फ्रांस ने रुकावटें डालीं, लड़ाई हुई; रूस कुछ रुका। लेकिन फिर वही कोशिश जारी हो गयी, फिर वही राजनैतिक पेंच चलने लगे। आखिरकार सन् 1914 की बड़ी लड़ाई आरंभ हुई, और उसमें इंग्लैंड, फ्रांस, रूस और इटली में खुफिया समझौते हुए। दुनिया के सामने तो ऊंचे सिद्धांत रखे गये आजादी के और छोटे देशों की स्वतंत्रता के, लेकिन परदे के पीछे गिद्धों की तरह लाश के इंतजार में उसके बंटवारे के मनसूबे निश्चित किये गये।

पर ये मनसूबे भी पूरे नहीं हुए। उस

लाश के मिलने के पहले जारों का रूस ही खत्म हो गया। वहां क्रांति हुई, और हुकूमत और समाज दोनों का ही उलट-फेर हो गया। बोलशेविकों ने तमाम पुराने खुफिया समझौते प्रकाशित कर दिये, यह दिखाने को कि ये यूरोप की बड़ी-बड़ी साम्राज्यवादी शक्तियां कितनी धोखेबाज हैं। साथ ही इस बात की घोषणा की कि वे (बोलशविक) साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं, और किसी दूसरे देश पर अपना अधिकार नहीं जमाना चाहते। हरेक जाति को स्वतंत्र रहने का अधिकार है।

यह सफाई और नेकनीयती पश्चिम की विजयी शक्तियों को पसंद नहीं आयी। उनकी राय में खुफिया संधियों का ढिंढोरा पीटना शराफत की निशानी नहीं थी। खैर, अगर रूस की नई हुकूमत नालायक है, तो कोई वजह न थी कि वे अपने अच्छे शिकार से हाथ धो बैठें। उन्होंने खासकर अंग्रेजों ने—कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा किया। 486 वर्ष बाद इस पुराने शहर की हुकूमत इस्लामी हाथों से निकलकर फिर ईसाई हाथों में आयी। सुलतान-खलीफा जरूर मौजूद थे; लेकिन वह गुड्डे की भांति थे; जिधर मोड़ दिये जायें, उधर ही घूम जाते थे। आया सुफीया भी हस्बमामूल खड़ी थी और मस्जिद थी; लेकिन उसकी वह शान कहां, जो आजादी वक्त में थी, जब स्वयं सुलतान उसमें जुमे की नमाज पढ़ने जाते थे? सुलतान ने सिर झुकाया, खलीफा ने गुलामी तसलीम की; लेकिन चंद तुर्क ऐसे थे, जिनको यह स्वीकार न था। उनमें से एक मुस्तफा कमाल था, जिसने गुलामी से बगावत को बेहतर समझा।

इस अर्से में कुस्तुन्तुनिया के एक और वारिस और हकदार पैदा हुए—ये ग्रीक लोग थे। लड़ाई के बाद ग्रीस को मुफ्त में बहुत-सी जमीन मिली, और वह पुराने पूर्वी रोमन साम्राज्य का स्वप्न देखने लगा। अभी तक रूस रास्ते में था, और तुर्की तो मौजूद ही था। अब रूस मुकाबिले से हट गया, और तुर्क लोग हारे हुए परेशान पड़े थे। रास्ता साफ मालूम होता था। इंग्लैंड और फ्रांस के बड़े आदमियों को भी राजी कर लिया गया, फिर दिक्कत क्या?

लेकिन एक बड़ी कठिनाई थी। वह कठिनाई थी मुस्तफा कमालपाशा। उसने ग्रीक हमले का मुकाबिला किया और अपने देश से ग्रीक फौजों को बुरी तरह हराकर निकाला। उसने सुलतान-खलीफा को जिसने अपने मुल्क के दुश्मनों का साथ दिया था, एक गद्दार कहकर निकाल दिया। उसने मुल्क से सल्तनत और खिलाफत दोनों का सिलसिला ही मिटा दिया। उसने अपने गिरे और थके हुए मुल्क को, हजार कठिनाइयों और दुश्मनों के सामने खड़ा किया और उसमें फिर नई जान फूंक दी। उसने सबसे बड़े परिवर्तन धार्मिक और सामाजिक किये। स्त्रियों को परदे के बाहर खींचकर जाति में सबसे आगे रखा। उसने धर्म के नाम पर कट्टरपने को दबा दिया और सिर नहीं उठाने दिया। उसने सबमें नई तालीम फैलाई—हजार वर्ष पुराने रिवाजों और तरीकों को खत्म किया।

पुरानी राजधानी कुस्तुन्तुनिया को भी उसने इस पदवी से उतार दिया। डेढ़ हजार वर्ष से वह दो बड़े साम्राज्यों की राजधानी रही थी। अब राजधानी एशिया में अंगोरा नगर हो गया—एक छोटा-सा शहर; लेकिन तुर्की की नई शक्ति का एक नमूना। कुस्तुन्तुनिया नाम भी बदल गया—वह इस्तांबूल हो गया।

और आया सुफीया? उसका क्या हशर हुआ? वह चौदह सौ वर्ष की इमारत इस्तांबूल में खड़ी है, और जिन्दगी के ऊंच-नीच को देखती जाती है। नौ सौ वर्ष तक उसने ग्रीक धार्मिक गाने सुने और अनेक सुगंधियों को, जो ग्रीक पूजा में रहती हैं, सूंघा। फिर चार सौ अस्सी वर्ष तक अरबी अजान की आवाज उसके कानों में आयी और नमाज पढ़ने वालों की कतारें उसके पत्थरों पर खड़ी हुईं। और अब?

एक दिन, महीनों की बात है—साल 1935 में—गाजी मुस्तफा कमालपाशा (जिनको अब खास खिताब और नाम अतातुर्क का दिया गया है) के हुक्म से आया सुफीया मस्जिद नहीं रही। बगैर किसी धूमधाम के वहां के होजा लोग (मुस्लिम मुल्ला वगैरह) हटा दिये गये और अन्य मस्जिदों में भेज दिये गये। अब यह तय हुआ कि आया सूफी बजाय मस्जिद के एक म्यूजियम, संग्रहालय हो खासकर बाइजेंटाइन कलाओं का। बाइजेंटाइन जमाना तुर्कों के आने के पहले का ईसाई जमाना था। तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा 1452 ई. में किया था। उस समय से समझा जाता है कि बाइजेंटाइन कला खत्म हो गयी, इसलिए अब आया सुफीया एक प्रकार से फिर ईसाई जमाने को वापस चली गयी—मुस्तफा कमाल के हुक्म से!

आजकल वहां जोरों से खुदाई हो रही है। जहां-जहां मिट्टी जम गयी थी, हटाई जा रही है, और पुराने मोजाइक्स निकल रहे हैं। बाइजेंटाइन कला के जानने वाले अमेरिका और जर्मनी से बुलाए गये हैं, और उन्हीं की निगरानी में काम हो रहा है। फाटक पर संग्रहालय की तख्ती लटकती है और दरवान बैठा है। उसको आप अपना छाता-छड़ी दीजिए, उनका टिकट लीजिए और अंदर जाकर इस प्रसिद्ध पुरानी कला के नमूने देखिए। और देखते-देखते इस संसार के विचित्र इतिहास पर विचार कीजिए, अपने दिमाग को हजारों वर्ष आगे-पीछे दौड़ाइए; क्या-क्या तसवीरें, क्या-क्या तमाशे, क्या-क्या जुल्म, क्या अत्याचार आपके सामने आते हैं। उन दीवारों से कहिए कि वे आपको अपनी कहानी सुनावें, अपने तजुरबे आपको दे दें। शायद कल और परसों जो गुजर गये, उन पर गौर करने से हम आज को समझें; शायद भविष्य के परदे को भी हटाकर हम झांक सकें।

लेकिन वे पत्थर और दीवारें खामोश हैं। उन्होंने इतवार की ईसाई पूजा बहुत देखीं और बहुत देखीं जुमे की नमाजें। अब हर दिन की नुमायश है उनके साए में! दुनिया बदलती रही, लेकिन वे कायम हैं। उनके घिसे हुए चेहरे पर कुछ हलकी मुसकुराहट-सी मालूम होती है, और धीमी आवाज-सी कानों में आती है—'इन्सान भी कितना बेवकूफ और जाहिल है कि वह हजारों वर्ष के तजुरबे से नहीं सीखता और बार-बार वही हिमाकतें करता है। ❑

31 जुलाई : मुंशी प्रेमचंद-जयंती

प्रेम का उदय

❑ मुंशी प्रेमचंद

भोंदू पसीने ते तर, लकड़ी का एक गट्ठा सिर पर लिये आया और उसे जमीन पर पटककर बंटी के सामने खड़ा हो गया, मानो पूछ रहा हो—क्या अभी तेरा मिजाज ठीक नहीं हुआ?

संध्या हो गयी थी, फिर भी लू चलती थी और आकाश पर गर्द छाई हुई थी। प्रकृति रक्त-शून्य देह की भाँति शिथिल हो रही थी।

भोंदू प्रातःकाल घर से निकला था। दोपहरी उसने एक पेड़ की छाँह में काटी थी। समझा था—इस तपस्या से देवीजी का मुँह सीधा हो जायेगा; लेकिन आकर देखा, तो वह अब भी कोप-भवन में थी।

भोंदू ने बातचीत छेड़ने के इरादे से कहा—लो, एक लोटा पानी दे दे, बड़ी प्यास लगी है। मर गया सारे दिन। बाजार में जाऊँगा, तो तीन आने से बेसी न मिलेंगे। दो-चार साँडे मिल जाते, तो मेहनत सुफल हो जाती।

बंटी ने खिड़की के अन्दर बैठे-बैठे कहा—धरम भी लूटोगे और पैसे भी। मुँह धो रखो।

भोंदू ने भँवें सिकोड़कर कहा—क्या धरम-धरम बकती है! धरम करना हँसी- खेल नहीं है। धरम वह करता है, जिसे भगवान् ने माना हो। हम क्या खाकर धरम करेंगे। भर-पेट चबेना तो मिलता नहीं, धरम करेंगे।

बंटी ने अपना वार ओछा पड़ते देखकर चोट पर चोट की—संसार में कुछ ऐसे महात्मा भी हैं, जो अपना पेट चाहे न भर सकें, पर पड़ोसियों को नेवता देते फिरते हैं, नहीं तो सारे दिन वन-वन लकड़ी न तोड़ते फिरते। ऐसे धरमात्मा लोगों को मेहरिया रखने की क्यों सूझती है, यही मेरी समझ में नहीं आता। धरम की गाड़ी क्या अकेले नहीं खींचते बनती?

भोंदू इस चोट से तिलमिला गया। उसकी जिरहदार नसें तन गयीं। माथे पर बल पड़ गये। इस अबला का मुँह वह एक डपट में बन्द कर सकता था; पर डाँट-डपट उसने न सीखी थीं। जिसके पराक्रम की सारी कंजड़ों में धूम थीं, जो अकेला सौ-पचास जवानों का नशा उतार सकता था, इस अबला के सामने चूँ तक न कर सका। दबी ज़बान से बोला—मेहरिया धरम बेचने के लिए नहीं लायी जाती, धरम पालने के लिए लायी जाती है।

यह कंजड़-दंपत्ति आज तीन दिन से और कई कंजड़-परिवारों के साथ इस बाग में उतरा हुआ था। सारे बाग में सिरकियाँ-ही-सिरकियाँ दिखाई देती थीं। उसी तीन हाथ चौड़ी और चार हाथ लंबी सिरकी के अन्दर एक-एक पूरा परिवार जीवन के समस्त व्यापारों के साथ कल्पवास-सा कर रहा था। एक किनारे चक्की थी, एक किनारे रसोई का स्थान, एक किनारे दो-एक अनाज के मटके। द्वार पर एक छोटी-सी खटोली बालकों के लिए पड़ी थी। हरेक परिवार के साथ दो-दो भैंसे या गधे थे। जब डेरा कूच होता था तो सारी गृहस्थी इन जानवरों पर लाद दी जाती थी। यही इन कंजड़ों का जीवन था। सारी बस्ती एक साथ चलती थी। आपस ही में शादी-ब्याह, लेन-देन, झगड़े-टंटे होते रहते थे। इस दुनिया के बाहर वाला अखिल संसार उनके लिए केवल शिकार का मैदान था। उनके किसी इलाके में पहुँचते ही वहाँ की पुलिस तुरन्त आकर उन्हें अपनी निगरानी में ले लेती थी। पड़ाव की चारों तरफ चौकीदार का पहरा हो जाता था। स्त्री या पुरुष किसी गाँव में जाते, तो दो-चार चौकीदार उनके साथ हो लेते थे। रात को भी उनकी हाजिरी ली जाती थी। फिर भी आस-पास के गाँवों में आतंक छाया हुआ था, क्योंकि कंजड़ लोग बहुधा घरों में घुसकर जो चीज चाहते उठा लेते और उनके हाथ में जाकर कोई चीज लौट न सकती थी। रात में ये लोग अक्सर चोरी करने निकल जाते थे। चौकीदारों को उनसे मिले रहने में ही अपनी कुशल दीखती थी। कुछ हाथ भी लगता था और जान भी बची रहती थी। सख्ती करने में प्राणों का भय था, कुछ मिलने का तो जिक्र ही क्या; क्योंकि कंजड़ लोग एक सीमा के बाहर किसी का दबाव न मानते थे। बस्ती में अकेला भोंदू अपनी मेहनत की कमाई खाता था, मगर इसलिए नहीं कि वह पुलीस वालों की खुशामद न कर सकता था। उसकी स्वतंत्र आत्मा अपने बाहुबल से प्राप्त किसी वस्तु में हिस्सा देना स्वीकार न करती थी, इसलिए वह यह नौबत आने ही न देती थी।

बंटी को पति की यह आचार-निष्ठा एक आँख न भाती थीं। उसकी और बहनें नई-नई साड़ियाँ और नये-नये आभूषण पहनतीं, तो बंटी उन्हें देख-देखकर पति की अकर्मण्यता पर कुढ़ती थी। इस विषय पर दोनों में कितने ही संग्राम हो चुके थे; लेकिन भोंदू अपना परलोक बिगाड़ने पर राजी न होता था। आज भी प्रातःकाल यही समस्या आ खड़ी हुई थी और भोंदू लकड़ी काटने जगलों में निकल गया था। सांडे मिल जाते, तो आँसू पुँछते, पर आज साँडे भी न मिले।

बंटी ने कहा—जिनसे कुछ नहीं हो

सकता, वही धरमात्मा बन जाते हैं। रांड़ अपने माँड़ ही में खुश है!

भोंदू ने पूछा—तो मैं निखट्टू हूँ?

बंटी ने इस प्रश्न का सीधा-साधा उत्तर न देकर कहा—मैं क्या जानूँ तुम क्या हो? मैं तो यही जानती हूँ कि यहाँ धेले-धेले के चीज के लिए तरसना पड़ता है। यहीं सबको पहनते-ओढ़ते, हँसते-खेलते देखती हूँ। क्या मुझे पहनने-ओढ़ने, हँसने- खेलने की साध नहीं है? तुम्हारे पल्ले पड़कर जिन्दगानी नष्ट हो गयी।

भोंदू ने एक क्षण विचार-मग्न रहकर कहा—जानती है, पकड़ जाऊँगा, तो तीन साल से कम की सजा न होगी।

बंटी विचलित न हुई। बोली—जब और लोग नहीं पकड़ जाते, तो तुम्हीं क्यों पकड़ जाओगे?

और लोग पुलीस को मिला लेते हैं, थानेदार के पाँव सहलाते हैं, चौकीदार की खुशामद करते हैं। तू चाहती है, तो मैं भी औरों की तरह सबकी चिरौरी करता फिरूँ?

बंटी ने अपनी हठ न छोड़ी—मैं तुम्हारे साथ सती होने नहीं आयी। फिर तुम्हारे छूरे-गड़ाँसे को कोई कहाँ तक डरे। जानवर को भी जब घास-भूसा नहीं मिलता, तो पगहा तुड़ाकर किसी के खेत में पैठ जाता है। मैं तो आदमी हूँ।

भोंदू ने इसका कुछ जवाब न दिया। उसकी स्त्री कोई दूसरा घर कर ले, यह कल्पना उसके लिए अपमान से भरी थी। आज बंटी ने पहिली बार यह धमकी दी। अब तक भोंदू इस तरफ से निश्चिन्त था। अब यह नई संभावना उसके सम्मुख उपस्थित हुई। उस दुर्दिन को वह अपना काबू चलते अपने पास न आने देगा।

आज भोंदू की दृष्टि में वह इज्जत नहीं रही, वह भरोसा नहीं रहा। मजबूत दीवार को टिकौने की जरूरत नही! जब दीवार हिलने लगती है, तब हमें उसको सँभालने की चिंता होती है। आज भोंदू की अपनी दीवार हिलती हुई मालूम होती थी।

आज तक बंटी अपनी थी। वह जितना अपनी ओर से निश्चिन्त था, उतना ही उसकी ओर से भी था। जिस तरह खुद रहता था, उसी तरह उसको रखता था। जो खुद खाता था, वही उसको खिलाता था। उसके लिए कोई विशेष फिक्र न थी, पर आज उसे मालूम हुआ कि वह अपनी नहीं है, अब उसका विशेष रूप से सत्कार करना होगा, विशेष रूप से दिलजोई करनी होगी।

सूर्यास्त हो रहा था। उसने देखा, उसका गधा चरकर चुपचाप सिर झुकाये चला आ रहा है। भोंदू ने कभी उसके खाने-पीने की चिन्ता न की थी, क्योंकि गधा कभी किसी और को अपना स्वामी बनाने की धमकी न दे सकता था। भोंदू ने बाहर आकर आज गधे को पुचकारा, उसकी पीठ सहलाई और तुरन्त उसे पानी पिलाने के लिए डोल और रस्सी लेकर चल दिया।

(2)

इसके दूसरे ही दिन कस्बे में एक धनी ठाकुर के घर चोरी हो गयी। उस रात को भोंदू अपने डेरे पर न था। बंटी ने चौकीदार से कहा—वह जंगल से नहीं लौटा। प्रातःकाल भोंदू आ पहुँचा। उसकी कमर में रुपयों की एक थैली थी। कुछ सोने के गहने भी थे। बंटी ने तुरन्त गहनों को ले जाकर एक वृक्ष की जड़ में गाड़ दिया। रुपयों की क्या पहचान हो सकती थी।

भोंदू ने पूछा—अगर कोई पूछे, इतने सारे रुपये कहाँ मिले, तो क्या कहोगी।

बंटी ने आँखें नचाकर कहा—कह दूँगी, क्यों बताऊँ। दुनिया कमाती है, तो किसी को हिसाब देने जाती है? हमीं क्यों अपना हिसाब दे?

भोंदू ने संदिग्ध भाव से गर्दन हिलाकर कहा—यह कहने से गला न छूटेगा बंटी। तू कह देना, मैं तीन-चार मास से दो-दो चार-चार रुपये महीने जमा करती आई हूँ। हमारा खरच ही कौन बड़ा लम्बा है।

दोनों ने मिलकर बहुत-से जवाब सोच निकाले—जड़ी-बूटियाँ बेचते हैं। एक-एक जड़ी के लिए मुट्ठी-मुट्ठी भर रुपये मिल जाते हैं। खस, साँडे, जानवरों की खालें, नख और चर्बी, सभी बेचते हैं।

इस ओर से निश्चिन्त होकर दोनों बाजार चले। बंटी ने अपने लिए तरह-तरह के कपड़े, चूड़ियाँ, टिकुलियाँ, बिन्दी, सेन्दुर, पान, तमाखू, तेल और मिठाई ली। फिर दोनों जने शराब की दूकान गये। खूब शराब पी। फिर दो बोतल शराब रात के लिए लेकर दोनों घूमते-घामते गाते-बजाते घड़ी रात गये डेरे पर लौटे। बंटी के पाँव आज जमीन पर न पड़ते थे। आते ही बन-ठनकर पड़ोसियों को अपनी छबि दिखाने लगी।

जब वह लौटकर अपने घर आई और भोजन पकाने लगी, तो पड़ोसियों ने टिप्पणियाँ करनी शुरू कीं—

'कहीं गहरा हाथ मारा है।'

'बड़ा धरमात्मा बना फिरता था।'

'बगला भगत है।'

'बंटी तो आज जैसे हवा में उड़ रही है।'

आज भोंदुआ की कितनी खातिर हो रही है। नहीं तो अभी एक लुटिया पानी देने भी न उठती थी।

रात को भोंदू को देवी की याद आयी। आज तक कभी उसने देवी की वेदी पर बकरे का बलिदान न किया था। पुलिस को मिलाने में ज्यादा खर्च था। कुछ आत्मसम्मान भी खोना पड़ता। देवीजी केवल एक बकरे में राजी हो जाती हैं। हाँ, उससे एक गलती जरूर हुई थी। उसकी बिरादरी के और लोग साधारणतया कार्यसिद्धि के पहले ही बलिदान दिया करते थे। भोंदू ने यह खतरा न लिया। जब तक माल हाथ न आ जाय, उसके भरोसे पर देवी-देवताओं को खिलाना उसकी व्यावसायिक बुद्धि को न जँचा। औरों से अपने कृत्यों को गुप्त रखना भी चाहता था, इसलिए किसी को सूचना भी न दी, यहाँ तक कि बंटी से भी न कहा—बंटी तो भोजन बना

रही थी, वह बकरे की तलाश में घर से निकल पड़ा।

बंटी ने पूछा—अब भोजन करने के जून कहाँ चले?

'अभी आता हूँ।'

'मत आओ, मुझे डर लगता है।'

भोंदू स्नेह के नवीन प्रकाश से खिलकर बोला—मुझे देर न लगेगी। तू यह गँड़ासा अपने पास रख ले।

उसने गँड़ासा निकालकर बंटी के पास दिया और निकला। बकरे की समस्या बेढब थी। रात को बकरा कहाँ से लाता। इस समस्या को भी उसने एक नये ढंग से हल किया। पास की बस्ती में एक गड़ेरिये के पास कई बकरे पले थे। उसने सोचा, वहीं से एक बकरा उठा लाऊँ। देवीजी को अपने बलिदान से मतलब है, या इससे कि बकरा कैसे आया और कहाँ से आया।

मगर बस्ती के समीप पहुँचा ही था कि पुलिस के चार चौकीदारों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और मुश्के बाँधकर थाने ले चले।

(3)

बंटी भोजन पकाकर अपना बनाव-सिंगार करने लगी। आज उसे अपना जीवन सफल जान पड़ता था। आनंद से खिली जाती थी। आज जीवन में पहली बार उसके सिर में सुगंधित तेल पड़ा। आईना उसके पास एक पुराना अन्धा-सा पड़ा हुआ था। आज वह नया आईना लायी थी। उसके सामने बैठकर उसने अपने केश सँवारे। मुँह पर उबटन मला। साबुन लाना भूल गयी थी। साहब लोग साबुन लगाने ही से तो इतने गोरे हो जाते हैं। साबुन होता तो उसका रंग कुछ तो निखर जाता। कल वह अवश्य साबुन की कई बट्टियाँ लायेगी, और रोज लगायेगी। केश गूँथकर उसने माथे पर अलसी का लुआब लगाया, जिसमें बाल न बिखरने पाये। फिर पान लगाये, चूना ज्यादा हो गया था। गलफड़ों में छाले पड़ गये; लेकिन उसने समझा, शायद पान खाने का यही मजा है। आखिर कड़वी मिर्च भी तो लोग मजे से खाते हैं! गुलाबी साड़ी पहन और फूलों का गजरा गले में डालकर उसने आईने में अपनी सूरत देखी, तो उसके आबनूसी रंग पर लाली दौड़ गयी। आप ही आप लज्जा से उसकी आँखें झुक गईं। दरिद्रता की आग से नारीत्व भी भस्म हो जाता है, नारीत्व की लज्जा का क्या जिक्र। मैले-कुचैले कपड़े पहनकर लजाना ऐसा ही है, जैसे कोई चबैने में सुगन्ध लगाकर खाये।

इस तरह सजकर बंटी भोंदू की राह देखने लगी। जब अब भी वह न आया, तो उसका जी झुँझलाने लगा। रोज तो साँझ ही से द्वार पर पड़े रहते थे, आज न जाने कहाँ जाकर बैठ रहे। शिकारी अपनी बन्दूक भर लेने के बाद इसके सिवा और क्या चाहता है कि शिकार सामने आये। बंटी के सूखे ह्रदय में आज पानी पड़ते ही उसका नारीत्व अंकुरित हो गया। झुँझलाहट के साथ उसे चिन्ता भी होने लगी। उसने बाहर निकलकर कई बार पुकारा। उसके कंठ-स्वर में इतना अनुराग कभी न था। उसे कई बार भान हुआ कि भोंदू आ रहा है, वह हर बार खिड़की के अन्दर दौड़ आयी और आईने में सूरत देखी कि कुछ बिगड़ न गया हो। ऐसी धड़कन, ऐसी उलझन उसकी अनुभूति से बाहर थी।

बंटी सारी रात भोंदू के इंतजार में उद्विग्न रही। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी, उसकी शंका तीव्र होती जाती थी। आज ही उसके वास्तविक जीवन का आरम्भ हुआ था और आज ही यह हाल।

प्रातःकाल वह उठी, तो अभी कुछ अँधेरा ही था। इस रतजगे से उसका चित्त खिन्न और सारी देह अलसाई हुई थी। रह-रहकर भीतर से एक लहर भी उठती थी, आँखें भर-भर आती थीं।

सहसा किसी ने कहा—अरे बंटी, भोंदू रात पकड़ गया।

(4)

बंटी थाने पहुँची तो पसीने में तर थी और दम फूल रहा था। उसे भोंदू पर दया न थी, क्रोध आ रहा था। सारा जमाना यही काम करता है और चैन की बंसी बजाता है। इन्होंने कहते-कहते हाथ भी लगाया, तो चूक गये। नहीं सहूर था, तो साफ कह देते, मुझसे यह काम न होगा। मैं यह थोड़े ही कहती थी कि आग में फाँद पड़ो।

उसे देखते ही थानेदार ने धौस जमाई—यही तो है भोंदुआ की औरत, इसे भी पकड़ लो।

बंटी ने हेकड़ी जताई—हाँ-हाँ पकड़ लो। यहाँ किसी से नहीं डरते। जब कोई काम ही नहीं करते, तो डरे क्यों।

अफसर और मातहत सभी की अनुरक्त आँखें बंटी की ओर उठने लगीं। भोंदू की तरफ से लोगों के दिल कुछ नर्म हो गये। उसे धूप से छाँह में बैठा दिया गया। उसके दोनों हाथ पीछे बँधे हुए थे और धूल धूसरित काली देह पर भी जूतों और कोड़ों की रक्तमय मार साफ नजर आ रही थी। उसने एक बार बंटी की ओर देखा, मानो कह रहा था—देखना कहीं इन लोगों के धोखे में न आ जाना।

थानेदार ने डाँट बतायी—जरा इसकी दीदा दिलेरी देखो, जैसे देवी ही तो है; मगर इस फेर में न रहना। यहाँ तुम लोगों की नस-नस पहचानता हूँ। इतने कोड़े लगवाऊँगा कि चमड़ी उड़ जायेगी। नहीं सीधे से कबूल दो। सारा माल लौटा दो। इसी में खैरियत है। भोंदू ने बैठे-बैठे कहा—क्या कबूल दे। जो देश को लूटते हैं, उनसे तो कोई नहीं बोलता, जो विचारे अपनी गाढ़ी कमाई की रोटी खाते हैं, उनका गला काटने को पुलिस भी तैयार रहती है। हमारे पास किसी को नजर-भेंट देने के लिए पैसे नहीं हैं।

थानेदार ने कठोर स्वर से कहा—हाँ-हाँ; जो कुछ कोर-कसर रह गई हो, वह पूरी कर दे। किरकिरी न होने पाये। मगर इन

बैठकबाजियों से बच नहीं सकते। अगर एकबाल न किया, तो तीन साल को जाओगे। मेरा क्या बिगड़ता है। अरे छोटेसिंह, जरा लाल मिर्च की धूनी तो दो इसे। कोठरी बन्द करके पसेरी-भर मिरचे सुलगा दो। अभी माल बरामद हुआ जाता है।

भोंदू ने उसी ढिठाई से कहा— दारोगाजी, बोटी-बोटी काट डालो, लेकिन कुछ हाथ न लगेगा। तुमने मुझे रात भर पिटवाया है, मेरी एक-एक हड्डी चूर-चूर हो गयी है। कोई दूसरा होता, तो अब तक सिधार गया होता। क्या, तुम समझते हो, आदमी को रुपये-पैसे जान से भी प्यारे होते हैं? जान ही के लिए तो आदमी सब तरह के कुकरम करता है। धूनी सुलगाकर भी देख लो।

दारोगाजी को अब विश्वास आया कि इस फौलाद को झुकाना मुश्किल है। भोंदू की मुखाकृति से शहीदों का-सा आत्म-समर्पण झलक रहा था। यद्यपि उनके हुक्म की तालीम होने लगी, दो कांसटेबलों ने भोंदू को एक कोठरी में बन्द कर दिया, दो आदमी मिर्चें लाने दौड़े, लेकिन दारोगा की युद्ध-नीति बदल गयी थी। बंटी का हृदय क्षोभ से फटा जाता था। वह जानती थी, चोरी करके एकबाल कर लेना कंजड़ जाति की नीति में महान् लज्जा की बात है; लेकिन क्या यह सचमुच मिर्च की धूनी सुलगा देंगे? इतना कठोर है इनका हृदय? सालन बघारने में कभी मिर्च जल जाती है, तो छींकों और खाँसियों के मारे दम निकलने लगता है। जब नाक के पास धूनी सुलगाई जायेगी तब तो प्राण ही निकल जायँगे। उसने जान पर खेलकर कहा—दारोगाजी, तुम समझते होगे कि इन गरीबों की पीठ पर कोई नहीं है; लेकिन मैं कहे देती हूँ, हाकिम से रत्ती-रत्ती हाल कह दूँगी। भला चाहते हो, तो उसे छोड़ दो, नहीं इसका फल बुरा होगा।

थानेदार ने मुस्कराकर कहा—तुझे क्या, वह मर जायेगा, किसी और के नीचे बैठ जाना। जो कुछ जमा-जथा लाया होगा, वह तो मेरे ही हाथ में होगी। क्यों नहीं एकबाल करके उसे छुड़ा लेती। मैं वादा करता हूँ, मुकदमा न चलाऊँगा। सब माल लौटा दे। तूने ही उसे मंत्र दिया होगा। गुलाबी साड़ी, पान और खुशबूदार तेल के लिए तू ही ललच रही होगी। उसकी इतनी साँसत हो रही है और तू खड़ी देख रही है।

शायद बंटी की अंतरात्मा को यह विश्वास न था कि यह लोग इतने अमानुषीय अत्याचार कर सकते हैं, लेकिन सचमुच धूनी सुलगा दी गयी। मिर्च की तीखी जहरीली झार फैली और भोंदू के खाँसने की आवाजें कानों में आयीं, तो उसकी आत्मा कातर हो उठी। उसका वह दुस्साहस झूठे रंग की भाँति उड़ गया। उसने दारोगाजी के पाँव पकड़ लिये और दीन भाव से बोली—मालिक, मुझ पर दया करो। मैं सब कुछ दे दूँगी।

धूनी उसी वक्त हटा ली गयी।

(5)

भोंदू ने सशंक होकर पूछा—धूनी क्यों हटाते हो?

एक चौकीदार ने कहा—तेरी औरत ने एकबाल कर लिया।

भोंदू की नाक, आँख, मुँह से पानी जारी था। सिर चक्कर खा रहा था। गले की आवाज बंद-सी हो गयी थी; पर वह वाक्य सुनते ही सचेत हो गया। उसकी दोनों मुट्ठियाँ बँध गयी। बोला—क्या कहा?

'कहा क्या, चोरी खुल गयी। दारोगाजी माल बरामद करने गये हुए हैं। पहले ही एकबाल कर लिया होता, तो क्यों इतनी साँसत होती।'

भोंदू ने गरजकर कहा—वह झूठ बोलती है।

'वहाँ माल बरामद हो गया, तुम अभी अपनी ही गा रहे हो।'

परम्परा की मर्यादा को अपने हाथों भंग होने की लज्जा से भोंदू का मस्तक झुक गया। इस घोर अपमान के बाद अब उसे अपना जीवन दया, घृणा और तिरस्कार इन सभी दशाओं से निखिद जान पड़ता था। वह अपने समाज में पतित हो गया था।

सहसा बंटी आकर खड़ी हो गयी और कुछ कहना ही चाहती थी कि भोंदू की रौद्र मुद्रा देखकर उसकी जबान बन्द हो गयी। उसे देखते ही भोंदू की आहत मर्यादा किसी आहत सर्प की भाँति तड़प उठी। उसने बंटी को अंगारों-सी तपती हुई लाल आँखों से देखा। उन आँखों में हिंसा की आग जल रही थी। बंटी सिर से पाँव तक काँप उठी। वह उलटे पाँव वहाँ से भागी। किसी देवता के अग्निबाण के समान वे दोनों अंगारों सी आँखें उसके हृदय में चुभने लगीं।

थाने से निकलकर बंटी ने सोचा, अब कहाँ जाऊँ, भोंदू उसके साथ होता तो वह पड़ोसियों के तिरस्कार को सह लेती। इस दशा में उसके लिए अपने घर जाना असम्भव था। वह दोनों अंगारे-सी आँखें उसके हृदय में चुभी जाती थीं, लेकिन कल की सौभाग्य विभूतियों का मोह उसे डेरे की ओर खींचने लगा। शराब की बोतल अब भी भरी धरी थी। फुलौड़ियाँ छींके पर हाँड़ी में धरी थीं। वह तीव्र लालसा, जो मृत्यु को सम्मुख देखकर भी संसार के भोग्य पदार्थों की ओर मन को चलायमान कर देती है, उसे खींचकर डेरे की ओर ले चली।

दोपहर हो गयी थी। वह पड़ाव पर पहुँची, तो सन्नाटा छाया हुआ था। अभी कुछ देर पहले जो स्थान जीवन का क्रीड़ा-क्षेत्र बना हुआ था, बिलकुल निर्जन हो गया था। यह बिरादरी वालों के तिरस्कार का सबसे भंयकर रूप था। सभी ने उसे त्याज्य समझ लिया। केवल उसकी खिड़की उस निर्जनता में रोती हुई खड़ी थी। बंटी ने उसके अन्दर पाँव रखे, तो उसके मन की कुछ वही दशा हुई, जो अकेला घर देखकर किसी चोर की होती है। कौन-कौन सी चीज समेटे? उस कुटी में उसने रो-रोकर पाँच वर्ष काटे थे, पर आज

उसे उससे वही ममता हो रही थी, जो किसी माता को अपने दुर्गुणी पुत्र को देखकर होती है, जो बरसों के बाद परदेश से लौटा हो। हवा से कुछ चीजें इधर की उधर हो गयी थीं। उसने तुरन्त उसे सँभालकर रखा। फुलौड़ियों की हाँड़ी छींके पर कुछ ठंडी हो गयी थी। शायद उस पर बिल्ली झपटी थी। उसने जल्दी से हाँड़ी उतार कर देखी। फुलौड़ियाँ अछूती थीं। पानी पर जो गीला कपड़ा लपेटा था, वह सूख गया था। उसने तुरन्त कपड़ा तर कर दिया।

किसी पाँव की आहट पाकर उसका कलेजा धक से हो गया। भोंदू आ रहा है। उसकी वह दोनों अंगारे-सी आँखें! उसके रोयें खड़े हो गये। भोंदू के क्रोध का उसे दो-एक बार अनुभव हो चुका था, लेकिन उसने दिल को मजबूत किया। क्यों मारेगा? कुछ कहेगा, कुछ पूछेगा, कुछ सवाल-जवाब करेगा कि यों ही गँड़ासा चला देगा। उसने उसके साथ कोई बुराई नहीं की। आफत से उसकी जान बचाई। मरजाद जान से प्यारी नहीं होती। भोंदू को होगी, उसे नहीं है। क्या इतनी-सी बात के लिए वह उसकी जान ले लेगा?

उसने सिरकी के द्वार से झाँका। भोंदू न था, केवल उसका गधा चला आ रहा था।

बंटी आज उस अभागे से गधे को देखकर ऐसी प्रसन्न हुई, मानों अपना भाई नैहर से बतासों की पोटली लिये थका-माँदा चला आता हो। उसने जाकर उसकी गर्दन सहलाई और उसके थूथन को अपने मुँह से लगा लिया। वह उसे फूटी आँखों न भाता था, पर आज उसने उसे कितनी आत्मीयता हो गई थी। वह दोनों अंगारे-सी आँखें उसे घूर रही थीं। वह सिहर उठी।

उसने फिर सोचा—क्या किसी तरह न छोड़ेगा? वह रोती हुई उसके पैरों पर गिर पड़ेगी। क्या तब भी न छोड़ेगा? इन आँखों की वह कितनी सराहना किया करता था। इनमें आँसू बहते देखकर भी उसे दया न आयेगी?

बंटी ने चुक्कड़ में शराब उँड़ेलकर पी ली और छींके से फुलौड़ियाँ उतार कर खायी। जब उसे मरना ही है, तो साध क्यों रह जाय। वह दोनों अंगारे-सी आँखें उसके सामने चमक रही थीं। उसने दूसरा चुक्कड़ भरा और पी गयी। जहरीला ठर्रा, जिसे दोपहर की गर्मी ने और भी घातक बना दिया था, देखते-देखते उसके मस्तिष्क को खौलाने लगा। बोल आधी हो गयी थी।

उसने सोचा—भोंदू कहेगा, तूने इतनी दारू क्यों पी तो वह क्या कहेगी? कह देगी—हाँ पी, क्यों न पीये, इसी के लिए तो यह सब कुछ हुआ। वह एक बूँद भी न छोड़ेगी। जो होना हो, हो। भोंदू उसे मार नहीं सकता। इतना निर्दयी नहीं है, इतना कायर नहीं है। उसने फिर चुक्कड़ भरा और पी गयी। पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन की अतीत स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने खिंच गयीं। सैकड़ों ही बार दोनों में गृह-युद्ध हुए थे। आज बंटी को हर बार अपनी ही ज्यादती मालूम हो रही थी। बिचारा जो कुछ कमाता है, उसी के हाथों पर रख देता है। अपने लिए कभी एक पैसे की तम्बाकू भी लेता है तो पैसा उसी से माँगता है। भोर से साँझ तक वन-वन फिरा ही तो करता है, जो काम उससे नहीं होता वह कैसे करे?

यकायक एक कांस्टेबल ने आकर कहा—अरी बंटी, कहाँ है? चल देख भोंदुआ का हाल वे-हाल हो रहा है। अभी तक तो चुपचाप बैठा था। फिर न-जाने क्या जी में आया कि एक पत्थर पर अपना सिर पटक दिया। मगर लहू बह रहा है। हम लोग दौड़कर पकड़ न लेते, तो जान ही दे दी थी।

(6)

एक महीना बीत गया था। सन्ध्या का समय था, काली-काली घटायें छाई थीं और मूसलधार वर्षा हो रही थी! भोंदू की सिरकी अब भी निर्जन स्थान पर खड़ी थी, भोंदू खटोली पर पड़ा हुआ था? उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और देह जैसे सूख गयी थी। वह सशंक आँखों से वर्षा की ओर देखता है, चाहता है उठकर बाहर देखूँ, पर उठा नहीं जाता।

बंटी सिर पर घास का एक बोझ लिये पानी में लथ-पथ आती दिखाई दी। वही गुलाबी साड़ी है, पर तार-तार किन्तु उसका चेहरा प्रसन्न है। विषाद और ग्लानि के बदले आँखों से अनुराग टपक रहा है। गति में वह चपलता, अंगों में वह सजीवता है, जो चित्त की शांति का चिन्ह है। भोंदू ने क्षीण स्वर में कहा—तू इतना भीग रही है, कहीं बीमार पड़ गयी, तो कोई एक घूँट पानी देने वाला भी न रहेगा। मैं कहता हूँ, तू क्यों इतना मरती है? दो गट्ठे तो बेच चुकी थी। तीसरा गट्ठा लाने का काम क्या था। यह हाँड़ी में क्या लायी है?

बंटी ने हाँड़ी को छिपाते हुए कहा—कुछ तो नहीं है, कैसी हाँड़ी?

भोंदू जोर लगाकर खटोली से उठा, अंचल के नीचे छिपी हुई हाँड़ी खोल दी और उसके भीतर नजर डालकर बोला—अभी लौटा, नहीं तो मैं हाँड़ी फोड़ दूँगा।

बंटी ने धोती से पानी निचोड़ते हुए कहा—जरा आईने में सूरत देखो। घी, दूध कुछ न मिलेगा, तो कैसे उठोगे?—कि सदा खाट पर सोने का ही विचार है।

भोंदू ने खटोली पर लेटते हुए कहा—अपने लिए तो एक साड़ी नहीं लाई, कितना कहके हार गया, मेरे लिए घी और दूध सब चाहिए। मैं घी न खाऊँगा।

बंटी ने मुस्कराकर कहा—इसलिए तो घी खिलाती हूँ, कि तुम जल्दी से काम-धंधा करने लगो और मेरे लिए साड़ी लाओ।

भोंदू ने भी मुस्कराकर कहा—तो आज जाकर कहीं सेंध मारूँ?

बंटी ने उसके गाल पर एक ठोकर देकर कहा—पहले मेरा गला काट देना, तब जाना। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

‘बा’ जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। ‘पहला गिरमिटिया’ की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और ‘बा’ उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है ‘बा’ का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

घटनाएं तेजी से घट रही थीं जैसे रात को सोए और सवेरे तारीख बदल गयी। मोहनदास को पता चला अप्रवासी कानून सोलह अगस्त को पास होने वाला है। पंजीकरण कानून को बदलने की कोई संभावना नहीं। कुछ तो करना होगा, जन-आक्रोश को मंच पर लाकर इन हुक्मरान को नाराजगी का अहसास कराना होगा। उन्होंने जनरल स्मट्स को संदेश भेजा कि अगर सोलह अगस्त से पहले काला कानून निरस्त न हुआ तो जिन लोगों ने पंजीकरण कराया है, वे उन्हें जन सभा में नष्ट कर देंगे। जो नतीजा होगा सहर्ष स्वीकार करेंगे। स्मट्स ने उसे अपमानजनक धमकी मानकर अस्वीकार कर दिया। विधायकों ने उसे भारतीयों को चिढ़ाने वाला गुस्ताख संदेश मानकर उसकी उपेक्षा की।

उस उपेक्षा का नतीजा यह हुआ कि 16 अगस्त, 1908 को हमीदा मस्जिद के मैदान में तीन हजार के लगभग भारतीय, हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई इकट्ठे हुए। बीचोबीच जल्दी-जल्दी में एक मंच बनाकर उस पर चार पैरों वाला एक विशाल अंगीठा रखा, पहले से ही इकट्ठे किये गये प्रमाण पत्र रखे गये और मिट्टी के तेल का पीपा रखा गया। मोहनदास ने जवाब पाने का समय चार बजे अपरान्ह निर्धारित किया था। ठीक चार बजे एक साइकिल सवार तेजी से आता नजर आया। सब सांस रोककर उसके पहुंचने की प्रतीक्षा करने लगे। आशा के विपरीत आशा...सरकार ने हो सकता है सकारात्मक जवाब भेजा हो। वह एक तार था। तार जोर से पढ़ा गया। स्थिति पूर्ववत थी। काला कानून नये दमनकारी कानून की संभावना के साथ मुस्कुरा रहा था। अंगीठी में तेल पड़ गया। वह भभक उठी। लोगों ने पंजीकरण प्रमाणपत्र तेल में भिंगोकर अंगीठी में डालने शुरू कर दिये। चिल्लाते जा रहे थे, जला डालो, सब जला डालो। जैसे-जैसे आग चेत रही थी लोगों का गुस्सा बढ़ रहा था। आवाजें भी उसी के साथ तेज होती जा रही थीं। जो देर से आये थे और पंजीकरण प्रमाण-पत्र के बारे में निर्णय रोके हुए थे उन्होंने भी एक-एक करके अग्नि के सुपुर्द कर दिये।

अंत में एक व्यक्ति भीड़ से बाहर आया और अपना प्रमाण-पत्र सुपुर्द ए आग कर दिया। लोग चकित भाव से उसे देखने लगे। वह बुलन्द आवाज में बोला, ‘गांधी भाई पर उंगली उठाना मेरी भारी भूल थी। मैं माफी चाहता हूं।’ वह मीर आलम था जिसने गांधी भाई पर आरोप लगाया था कि स्मट्स से पैसा लेकर उन्होंने पूरे भारतीय समुदाय को धोखा दिया था। उसी भ्रम में उन पर जानलेवा हमला भी किया था। गांधी भाई आगे आये और गले लगाकर कहा, ‘मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, न नाराजगी है।’ भीड़ की तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा अहाता गूंज उठा।

बाद में पता चला वह ट्रान्सवाल छोड़कर चला गया।

कस्तूर के लिए अंतिम दो बच्चों के जन्म के बाद से मासिक धर्म बहुत कष्टकारी हो गया था। अत्यधिक रक्तस्राव के कारण कमजोरी आ जाती थी। ऊपर से पति और बेटे का गोरी सरकार से टकराना, उनके जेल जाते और आते रहने के कारण भावनात्मक दबाव बना रहता था। कस्तूरबा पर यह पंक्ति चरितार्थ होती थी, हमारी तो आदत है, हम कुछ नहीं कहते...। अपना रोजमर्रा का काम वह उसी फुर्ती और कुशलता से करती थी। वह इतनी नाजुक औरत है, उसे काम करते देखकर अंदाज लगाना मुश्किल था। मोहनदास के लिए सत्याग्रह सर्वोपरि था। जब वे फीनिक्स आते थे तो कस्तूरबा के गिरते स्वास्थ्य पर ध्यान देना संभव नहीं होता था। वे यह मानते थे कि सत्याग्रह तनी हुई रस्सी पर चलना है, इसलिए उसके लिए इकमना होना जरूरी है। कस्तूरबा भी इस बात को

समझती थी। इधर सत्याग्रह ढीला पड़ने लगा था। हालांकि पंजीकरण-दहन ने ध्यान आकृष्ट किया था पर उससे कोई खास परिवर्तन नहीं आया था।

इस बार मोहनदास दो सप्ताह के लिए फीनिक्स आये तो बहुत व्यस्त रहे। अक्तूबर के सप्ताह में यह सोचकर जोहन्सबर्ग चले गये, हो सकता है उनके जेल जाने से आंदोलन में गर्मी आ जाए। उन्होंने वहां जाकर इंडियन ओपिनियन के लिए तार से संदेश भेजा, 'अंत तक दृढ़ता से जमे रहो, आत्म-पीड़ा ही निदान है, अंततः जीत हमारी होगी।' कस्तूरबा को बताया गया तो परेशान कस्तूरबा को बहुत सुकून मिला। मन में सोचा, स्त्रियां तो उसकी प्रतिमूर्ति होती हैं। सोचकर मुस्कुरा दी।

जेल में मोहनदास को यदा-कदा ही मुलाकातियों से मिलने दिया जाता था। अक्तूबर का अंत था। मोहनदास अपने बेटे हरिलाल और निकटतम मित्र कैलनबैक से मिले तो बहुत प्रसन्न हुए। तभी उन्हें एलबर्ट वेस्ट की जरूरी चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था कस्तूरबा को बहुत रक्तस्राव हो रहा है। वे कस्तूरबा को अस्पताल में भर्ती करना चाहते हैं। वे चाहते थे गांधी भाई जुर्माना भरें और अपनी सजा को कम कराकर फीनिक्स आ जाएं। मोहनदास ने जवाब में कस्तूरबा को पत्र लिखा :

प्रिय कस्तूर,

मि. वेस्ट ने तुम्हारी तकलीफ की सूचना मुझे दी। हालांकि तुम्हारे स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित हूं पर मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि वहां पहुंचकर तुम्हारी देखभाल कर सकूं। तुम जानती हो कि मैंने इस संघर्ष के लिए जीवन में सब कुछ छोड़ दिया। अगर मैं आता हूं तो मुझे कानून तोड़ने का गुनाह स्वीकार करना होगा तभी मैं जेल से छूट सकता हूं। ऐसा करना हमारे आंदोलन को मजाक बना देगा।

मैं अनुभव करता हूं कि अगर तुम हिम्मत रखोगी और ठीक से खाओ पियोगी तो तुम बेहतर अनुभव करोगी। फिर भी अगर तुम मर गयी तो यह अच्छा होगा तुम मेरे से पहले चली जाओ। तुम जानती हो मैं तुम्हें बेहद प्यार करता हूं। तुम्हारे चले जाने के बाद भी मैं तुम्हें उसी तरह प्यार करता रहूंगा। अगर तुम नहीं भी रहती तो तुम मेरे लिए सदा जीवित रहोगी। तुम्हारी आत्मा अमर है।

जहां तक मेरा सवाल है, मैं तुम्हें आश्वस्त कर देना चाहता हूं कि तुम्हारे न रहने पर दूसरा विवाह करने का मेरा कोई इरादा नहीं। मैंने तुम्हें यह अनेकानेक बार कहा है। ईश्वर पर विश्वास रखो और अपनी आत्मा को स्वतंत्र छोड़ दो। तुम्हारी मृत्यु सत्याग्रह के लिए महान बलिदान होगी।

मेरा संघर्ष केवल शासन के विरुद्ध ही नहीं प्रकृति के विरुद्ध भी है। मैं आशा करता हूं कि तुम मेरी बात समझोगी और नाराज नहीं होगी। मैं तुमसे यही आशा करता हूं।

तुम्हारा - मोहनदास

नीचे कुछ पंक्तियां मणिलाल और बहू गुलाब के लिए भी लिखी थीं—

तुम दोनों भी इस पत्र को पढ़ना और अपनी बा को पढ़कर सुना देना...मैं चिन्तित हूं पर असहाय हूं। तुम दोनों अपनी बा के स्वास्थ्य के बारे में सूचित करते रहना। रामदास और देवदास का ध्यान रखना। मैं बा के लिए प्रार्थना करूंगा, जल्दी ठीक हो जाये।

बापू के आशीर्वाद।

जैसे ही मोहनदास जेल से छूटे, वे तुरंत फीनिक्स पहुंचे। वे कस्तूरबा को देखकर चकित रह गये। कितनी दुबली, थकी और निर्जीव-सी लग रही थी। उन्हें देखकर उसने पहला वाक्य यही बोला, 'हरिलाल फिर पकड़ा गया।'

मोहनदास यह वाक्य सुनकर परेशान हो उठे कि इस खबर ने उस पर कितना प्रभाव डाला है। वह इतनी अशक्त हो गयी थी कि उसके लिए अपना नित्य कर्म करना भी संभव नहीं रहा था। मोहनदास के बहुत समझाने-बुझाने पर कस्तूरबा मेडिकल जांच के लिए तैयार हुई। वे कस्तूरबा को अपने पारसी मित्र डॉ. नानजी के पास ले गये। डॉक्टर ने कहा रक्तस्राव रोकने के लिए तत्काल ऑपरेशन करना पड़ेगा। कस्तूरबा ने स्वीकृति दे दी। ऑपरेशन सफल रहा है। कस्तूरबा ने सफाई की तकलीफ का सामना बहुत बहादुरी से किया। नानजी और उनकी नर्स पत्नी, मि. गांधी को अलग ले गये और कहा, 'इस हालत में मरीज को फीनिक्स ले जाना ठीक नहीं, उसे उन्हीं के घर पर रहने दें। वे दोनों उनकी ठीक तरह देखभाल करेंगे। आप निश्चिंतता के साथ जोहान्सबर्ग जा सकते हैं।'

मोहनदास को जोहान्सबर्ग में चल रहे सत्याग्रह की चिन्ता थी। कुछ दिन रहकर मोहनदास ने कस्तूरबा से सलाह करने के बाद और हां कह देने पर वे जोहान्सबर्ग चले गये। कस्तूरबा को रक्तस्राव जारी रहा। दवाइयां लगातार दी जा रही थीं। नानजी स्वयं मांसाहारी थे। उन्हें लगा शाकाहारी भोजन से जल्दी पोषण नहीं हो पायेगा।

मोहनदास जैसे ही दफ्तर पहुंचे, फोन की घंटी बजी। उनको आवाज कुछ विचित्र सी लगी, शायद फोन नया था। उधर से नानजी बोल रहे थे। वे बोले, 'कस्तूरबाई बहुत कमजोर हैं, मैं समझता हूं उन्हें बीफ का शोरबा दिया जाना चाहिए।'

मोहनदास की पहली प्रतिक्रिया थी, 'यह सोचा भी नहीं जा सकता।'

'मुझे नहीं लगता इस हालत में उन्हें बचाया जा सकेगा।' डॉक्टर ने जोर देकर कहा, 'अगर तुम मेरी बात नहीं सुनोगे तो उन्हें खो दोगे।'

'तुमने कस्तूरबा से पूछा, मैं उसकी तरफ से कोई जवाब नहीं दे सकता।'

'वे इस हालत में नहीं हैं कि मैं पूछ सकूं।'

'मैं पहुंच रहा हूं, तब तक तुम अपना कोई निर्णय लागू न करना।' अगले दिन सवेरे जब डरबन पहुंचे तो पता चला कि बिना कस्तूर को बताए एक कटोरा बीफ सूप दिया जा चुका था। मोहनदास सिर पकड़कर

बैठ गये। डॉक्टर उनके नजदीकी दोस्त थे। वे जान रहे थे सूप देने के पीछे उन लोगों की कोई दुर्भावना नहीं थी। जिन लोगों के लिए मांस भक्षण सामान्य बात होती है, वे समझ नहीं पाते कि आस्थावान शाकाहारी को धोखे से मांस खिला देना कितनी बड़ी हिंसा है, पशु की तो पशु की, उसकी अपनी जीवित आस्था और मान्यताओं की भी। उनके मुंह से यही निकला, 'डॉक्टर, तुमने कस्तूर को धोखा दिया!'

'मैं डॉक्टर हूं, मेरे लिए यह जरूरी नहीं कि मैं मरीज से पूछकर उसका इलाज करूं। खासतौर से जब उसकी जिन्दगी-मौत का सवाल हो।'

'तुम नहीं समझ पाओगे, जब उसे पता चलेगा कि उसने गाय के गोश्त का सूप पिया है तो जी नहीं पायेगी। आस्था विश्वास कुछ लोगों के लिए जीवन-मरण का सवाल होता है।' यह बात कहकर वे वातावरण को विषैला नहीं बनाना चाहते थे। दोनों पति-पत्नी ने कस्तूरबा की मन से सेवा की थी।

मोहनदास ने इस घटना को अपने तक ही सीमित रखने का निश्चय कर लिया। यह दूसरा रहस्य था जो उन्होंने अपने मन में रखा था। पहला था अपने बा-बापू से अपने मांस भक्षण की बात छिपाना। उन्होंने कस्तूरबा से केवल यही पूछा, 'डॉक्टर का कहना है तुम्हें ताकत के लिए मांसाहारी सूप देना है...' वह अपनी कमजोर आवाज में जितनी जोर से कह सकती थी यही कह पायी, 'हरगिज नहीं, मुझे घर ले चलो, मैं वहां ठीक हो जाऊंगी।'

मोहनदास को कस्तूरबा की बात से बहुत राहत मिली। वह अपने निश्चय की पक्की है और स्वयं ही इतनी कठिन समस्या का सहज समाधान निकाल लिया है।

उन्होंने डॉ. नानजी को बताया कि वे कस्तूरबा को फीनिक्स ले जा रहे हैं। डॉक्टर को धक्का-सा लगा, जबरदस्त आपत्ति की, 'तुम कितने जालिम हो, तुम्हारी पत्नी हिलने-डुलने की स्थिति में भी नहीं है। वह जरा सा झटका सहन नहीं कर पायेगी।'

'जो भी हो, वह यहां से जाना चाहती है।'

'तुम्हें जो करना हो करो। तुम इतना समझ लो कि तुम एक डॉक्टर की सुविचारित सलाह के बावजूद ले जा रहे हो...' डॉक्टर ने चेतावनी दी।

कस्तूरबा समझ रही थी कहीं कुछ गलत हुआ है। उसने डॉक्टर और उसकी पत्नी को, देखभाल और आतिथ्य के लिए धन्यवाद दिया। मोहनदास को धीरज बंधया, 'तुम मेरी चिन्ता न करो, मुझे कुछ नहीं होगा। मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊंगी।'

मोहनदास को चिन्ता थी, वे कस्तूरबा को इस हालत में स्टेशन कैसे ले जायें। रिक्शा में उसे सफर करना पसंद नहीं था। आदमी को आदमी खींचता है। आखिर रिक्शा ही बुलाया गया। डॉ. नानजी तटस्थ और नाराज हो गये थे। पहले डॉक्टर अपने मरीज को इलाज के अधबीच में ले जाना अपना अपमान समझते थे। जब मोहनदास ने कस्तूरबा को सहारा देकर रिक्शा में बैठाया तो वे चकित रह गये। कस्तूरबा के शरीर में हड्डी और खाल के सिवाय कुछ नहीं बचा था। इस अहसास ने उनकी बीमारी की गंभीरता और सफर की कठिनाइयों के बारे में ज्यादा चिन्तित कर दिया। पर कस्तूरबा के चेहरे पर अजब तरह की निश्चिन्तता थी।

कस्तूरबा को अपनी कमजोरी और बीमारी के कारण पति की गोद में रिक्शा में बैठकर जना बेशर्मी लग रही थी। पर वह कर भी क्या सकती थी। स्टेशन पहुंचकर मोहनदास को प्लेटफार्म पर दूर तक कस्तूरबा को हाथों पर ले जाना पड़ा था। संयोग से डिब्बे में थोड़े मुसाफिर थे, इसलिए कस्तूरबा लेटकर फीनिक्स तक जा सकी थी। मोहनदास ने पहले ही मि. वेस्ट को तार भेज दिया था कि वे कस्तूरबा को लेकर रेलगाड़ी से पहुंच रहे हैं। वेस्ट के पास हेमक, डोलीनुमा बिस्तर था। उसे ले जाने के लिए चार आदमियों की जरूरत होती थी। वेस्ट एक थर्मस में गर्म दूध, चार साथियों के साथ हेमक लेकर समय से पहले पहुंच गया। गाड़ी पहुंची तो वे सब उनका इन्तजार कर रहे थे।

सबसे पहले मोहनदास ने कस्तूरबा को दूध पिलाया। फिर हेमक में लिटाकर गन्ने के खेतों से होकर फीनिक्स के लिए पैदल चल दिये। गन्ने के खेतों से होकर दो मील जाना मुसीबत का काम था। गन्ने की पत्तियां धारदार होने के कारण लगते ही चीर देती हैं। सवेरे बारिश हुई थी। रास्ते भर कीचड़ और फिसलन थी। सब संभलकर बढ़ रहे थे। संभलकर चल रहे डोली वालों के हर कदम के साथ कस्तूरबा का विश्वास और उत्साह बढ़ रहा था। आखिर घर पहुंच गये। घर वालों और मित्रों से मिलकर कस्तूरबा में नई जीवन्तता आ गयी, उसने उद्घोषणा की कि वह अब स्वस्थ अनुभव कर रही है। मोहनदास के चेहरे पर मुस्कुराहट और निश्चिन्तता थी।

कस्तूरबा को अपने संदर्भ में मोहनदास के इलाज संबंधी प्रयोगों पर विश्वास नहीं था। लेकिन मोहनदास ने मिट्टी का इलाज करने के लिए कहा तो कोई आपत्ति नहीं की। कुछ ही दिन मिट्टी के इलाज के कारण कस्तूरबा के ऑपरेशन के जख्म भरने लगे। वह स्वस्थ होने लगी।

एक रोज एक साधु आया। मणिलाल और रामदास भी मौजूद थे। कस्तूरबा की बीमारी और शोरबे की बात सुनकर वह बताने लगा कि हमारे धर्म-ग्रंथों में मांस खाने के विरुद्ध कोई निर्देश नहीं है। मनु से उसने उद्धरण भी दिए। मोहनदास जानते थे कि वे बाद में जोड़े गये हैं। दोनों के बीच बहस छिड़ गयी। मोहनदास का कहना था कि हिन्दुओं के शाकाहार को धर्म-ग्रंथों का समर्थन है। बल्कि नैतिकता चिकित्सा की जानकारी के आधार पर भी शाकाहार ही उचित है। कस्तूरबा को हस्तक्षेप करके उस व्यर्थ के संवाद को यह कहकर रोकना पड़ा, 'स्वामी जी, आप कुछ भी कहें, मैं बीफ टी से निरोग नहीं होना चाहती। आप मेरे पति और बच्चों से जो चर्चा करना चाहें करें, कृपया मुझे परेशान न करें। यही मेरा निश्चय है।' स्वामी जी के तर्कों पर स्वतः विराम लग गया।

...क्रमशः अगले अंक में

गतिविधियां एवं समाचार

युवाओं के बीच 'गांधी-चर्चा' की श्रृंखला

उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल की कानपुर की कार्यकारिणी बैठक में जन स्वाध्याय अभियान के अंतर्गत 'गांधी-चर्चा' का कार्यक्रम प्रदेश के विद्यालयों में आयोजित करने का निर्णय हुआ, जिसके अंतर्गत उन्नाव सर्वोदय मंडल ने जिले के दस विद्यालयों में 'गांधी-चर्चा' की श्रृंखला का आयोजन किया, जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत है। सभी श्रृंखलाओं में उन्नाव जिला सर्वोदय मंडल के संरक्षक मोहनलाल शास्त्री, अध्यक्ष रमाशंकर भाई, उपाध्यक्ष नसीर अहमद, मंत्री संजीव श्रीवास्तव, जन स्वाध्याय अभियान के प्रदेश अध्यक्ष रघुराज सिंह 'मगन' एवं गांधीवादी अशोक भाई उपस्थित रहे। आप सभी के ही नेतृत्व में इन श्रृंखलाओं का आयोजन सम्पन्न हुआ।

गांधी चर्चा का पहला कार्यक्रम किंगसन इंटर कॉलेज, दरोगा बाग, उन्नाव में 30 जनवरी 2017 को गांधी निर्वाण दिवस पर आयोजित हुआ। इस अवसर पर प्रबंधक मो. आदिल के साथ शिक्षक-शिक्षिकाओं सहित कक्षा 9 से 12 तक के विद्यार्थियों ने सहभाग किया। विद्यार्थियों ने वक्ताओं से गांधी से संबंधित कई प्रश्न पूछे, जिसके जवाब वक्ताओं ने बखूबी दिया। प्रश्न पूछने में छात्राएं आगे रहीं। कार्यक्रम के अंत में प्रबंधक मो. आदिल ने इस पहल की प्रशंसा की।

गांधी-चर्चा का दूसरा कार्यक्रम डॉ. राममनोहर लोहिया पब्लिक हाईस्कूल, विनोबा नगर, उन्नाव में 29 अगस्त 2017 को आयोजित हुआ, जिसमें बच्चों ने तमाम तरह के गांधी से संबंधित प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा शांत की। इसमें प्रबंधक राम सजीवन यादव, शिक्षक-शिक्षिकाओं सहित कक्षा 6 से 10 तक के बच्चों ने भाग लिया।

गांधी चर्चा का तीसरा कार्यक्रम हंस वाहिनी विद्या मंदिर, पूरन नगर, उन्नाव में 6 सितंबर 2017 को संपन्न हुआ। कार्यक्रम में प्रबंधक रजपाल यादव के साथ शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा कक्षा 9 से 12 तक के बच्चे शामिल हुए।

गांधी का चौथा कार्यक्रम शहर से दूर गांव में बसे यूनिटी पब्लिक स्कूल, रानीगंज में हुआ। इस अवसर पर विद्यालय की प्रबंधक अर्चना वर्मा, प्रधानाचार्य अतुल कुमार साहू, शिक्षक-शिक्षिकाओं सहित विद्यार्थी उपस्थित रहे। इस कार्यक्रम में कक्षा 8 तक के ही विद्यार्थी थे, पर उत्सुक थे। बच्चों ने कई तरह के प्रश्न पूछे जिसके बारे में उन्हें बताया गया। स्कूल के प्रधानाचार्य ने इस कार्यक्रम की प्रशंसा की और भविष्य में एक बड़े कार्यक्रम की सहमति मांगी।

गांधी चर्चा का पांचवां कार्यक्रम डॉ. राममनोहर लोहिया इंटर कॉलेज, पोनी रोड, शुक्लागंज उन्नाव में संपन्न हुआ। चर्चा में भाग लेते हुए छात्र सुभाष ने गांधीजी के माता-पिता का नाम पूछा। पूजा सिंह तथा मुस्कान ने गांधीजी को महात्मा क्यों और किसने कहा, जानना चाहीं। प्रश्न पूछने वालों में ट्विंकल, कर्ण शर्मा, शिवा निषाद आदि भी शामिल थे। छात्रों के प्रश्नों का समाधान वक्ताओं ने बहुत सलीके से किया। इस अवसर पर प्रबंधक राजकुमार यादव प्रधानाचार्य गंगा सागर तथा शिक्षक व शिक्षिकाएं मौजूद रहीं।

गांधी चर्चा का छठा कार्यक्रम मैचलेस इंटर कॉलेज, ईदगाह रोड, गांधी नगर उन्नाव में आयोजित किया गया, जिसमें कक्षा 11-12 के विद्यार्थी थे। बच्चों ने कई प्रश्न पूछे और जवाब सुनकर प्रसन्नता जाहिर की। अंत में प्रधानाचार्य ने सभी का आभार व्यक्त किया।

गांधी चर्चा का सातवां कार्यक्रम सरदार पटेल जन हितकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मैनहा, उन्नाव के प्राकृतिक प्रांगण में प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्रों व सर्वोदयी कार्यकर्ताओं द्वारा प्रश्नोत्तरी के माध्यम से चर्चा सम्पन्न हुई। छात्रों के प्रश्नों में मुख्य रूप से—गांधीजी को महात्मा व राष्ट्रपिता क्यों और किसने कहा? उनके कितने बेटे थे, वे एक धोती ही क्यों पहनते थे आदि रहा। छात्रों का अनुशासन सराहनीय था, सभी छात्र अपने-अपने सवाल का जवाब पाकर प्रसन्न हुए।

गांधी चर्चा का आठवां कार्यक्रम ज्ञान ज्योति पब्लिक स्कूल, सिंगरोसी में दिसंबर माह की कड़ाके ठंड के बीच सम्पन्न हुआ। बच्चों ने जानना चाहा कि 1934 और 1944 में गांधीजी पर जानलेवा हमला क्यों हुआ? एक छात्र जानना चाहा कि गोडसे का गांधीजी से क्या संबंध था? अहिंसा क्या और सभी धरने व प्रदर्शन गांधीजी की प्रतिमा पर ही क्यों होते हैं। इन सवालों का जवाब सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष रामशंकर भाई, उपाध्यक्ष नसीर अहमद, मंत्री संजीव श्रीवास्तव तथा रघुराज सिंह 'मगन' ने दिये। इस अवसर पर प्रबंधक राजकुमार यादव, ए. जैदी भी मौजूद रहे।

गांधी चर्चा का नवां कार्यक्रम एम. अर्गल इस्लामिक एंड एजूकेशन सेंटर, ए.वी. नगर, उन्नाव में प्रबंधक, शिक्षकों और सर्वोदयी कार्यकर्ताओं के बीच प्रश्नोत्तरी के माध्यम से सम्पन्न हुआ।

गांधी चर्चा का दसवां कार्यक्रम गांधी निर्वाण दिवस 30 जनवरी 2018 को डा. राममनोहर लोहिया पब्लिक हाईस्कूल, विनोबा नगर, उन्नाव में प्रबंधक, शिक्षक, छात्र-छात्राओं, सर्वोदयी कार्यकर्ताओं व अतिथियों के बीच संपन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ गांधीजी के चित्र पर माल्यार्पण एवं उनके प्रिय भजन 'रघुपति राघव राजाराम' से हुआ। चर्चा में मुख्य रूप से गांधीजी के बारे में जानना चाहा, जिसमें प्रमुख रूप से सार्थक यादव, राहुल कश्यप, कोमल साहू, गरिमा, मानसी, रेखा यादव, अनुष्का शुक्ला, ज्योति साहू, विशाल यादव आदि प्रमुख थे।

इस अवसर पर आर. के. डी. इंटर कॉलेज, भुभुवार के पूर्व प्रधानाचार्य राअवतार कुशवाहा, चौ. खजान सिंह, महाविद्यालय के प्रबंधक मुकेश कुमार यादव, कांग्रेस के पूर्व जिला अध्यक्ष जंगबहादुर सिंह, अखिलेश तिवारी, सीताराम गुप्ता, सुखदेव सिंह, अनुपम, गिरजेश, मजहर हुसैन, जयकृष्ण पांडेय, सुमन मोहन बाजपेयी आदि सहित सर्वोदय मंडल के पदाधिकारी एवं कार्यकर्ता मौजूद रहे। रामसजीवन यादव ने आभार व्यक्त किया। अंत में दो मिनट के मौन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। **–संजीव भाई**

VSI-(E) 04 For the Year - 2018 to 2020 सर्वोदय जगत : 16-31 जुलाई, 2018 Regd.No. R.N.I.35495/78

वंदना ग्रोवर की तीन कविताएं

(एक)

एक औरत लें
किसी भी धर्म, जाति, उम्र की
पेट के नीचे
उसे बीचों-बीच चीर दें
चाहें तो किसी भी उपलब्ध
तीखे पैने औज़ार से
उसका गर्भाशय,
अंतड़ियां बाहर निकाल दें
बंद कमरे, खेत, सड़क या बस में
सुविधानुसार,
उसमें कंकड़, पत्थर, बजरी,
बोतल, मोमबत्ती, छुरी-कांटे और
अपनी सड़ांध भर दें
कई दिन तक, कुछ लोग
बारी-बारी से भरते रहें
जब आप पक जाएं
तो उसे सड़क पर
रेल की पटरी पर
खेत में या पोखर में छोड़ दें
पेड़ पर भी लटका सकते हैं
ध्यान रहे, उलटा लटकाएं,
उसी की साड़ी या दुपट्टे से
टांग कर पेश करें

काम तमाम न समझें
अभिनव प्रयोगों के लिए
असीम सम्भावनाएं हैं

(दो)

किशोरवय बेटियां
जान लेती हैं, जब मां होती हैं
प्रेम में
फिर भी वह करती हैं टूट कर प्यार
मां से
एक मां की तरह
थाम लेती हैं बाहों में
सुलाती हैं अपने पास
सहलाती हैं, समेट लेती हैं उनके आंसू
त्याग करती हैं अपने सुख का
नहीं करती कोई सवाल
नहीं करती रिश्तों को कटघरे में खड़ा
अकेले जूझती हैं
अकेले रोती हैं
और
बाट जोहती हैं मां के घर लौटने की

(तीन)

मैं क्यों दिन भर सोचती रहूं
क्यों मैं रात भर जागती रहूं
मैं क्यों थरथरा जाऊं आहट से
क्यों मैं सहम जाऊं दस्तक से
मैं क्यों चुप रहूं
मैं कुछ क्यों न कहूं

मैं क्यों किसी के बधियाकरण की
मांग करूं

क्यों मैं किसी के लिए
फांसी की बात करूं
मैं क्यों न्यायालय का
दरवाजा खटखटाऊं
क्यों मैं जा जाकर आयोगों में
गुहार लगाऊं
मैं यों न जीऊं
मैं क्यों खून के घूंट पीऊं

मैं खुद अपने दोस्त तय न करूं
क्यों मैं घर से बाहर न जाऊं
मैं क्यों अपनी पसंद के
कपड़े न पहनूं
क्यों मैं रात को फिल्म देखने न जाऊं
मैं क्यों डरूं
मैं क्यों मरूं

मैं क्यों अस्पतालों में पड़ी रहूं
वेन्टिलेटरों पर
क्यों मैं मुद्दा बनूं कि चर्चा हो
मेरे आरक्षणों पर
मैं क्यों इंडिया गेट के
नारों में गूंजती रहूं
क्यों मैं विरोध की मशाल बन कर
जलती रहूं
मैं क्यों न गाऊं
मैं क्यों न खिलखिलाऊं

मैं क्यों धरती-सी सहनशीलता का
बोझ ढोऊं
क्यों मैं मर मर कर कोमलता का
वेश धरूं
मैं क्यों दुर्गा, रणचण्डी,
शक्तिरूपा का दम भरूं
क्यों न बस मैं जीने के लिए
जिन्दगी जियूं
मैं क्यों खुद को भूलूं
मैं क्यों खुद को तोलूं

मैं क्यों अपने जिस्म से नफरत करूं
क्यों मैं अपने वजूद पर शर्मिंदा होऊं
मैं क्यों रोज अपने लिए
खुद मौत मांगू
क्यों मैं हाथ बांधे पीछे पीछे रहूं
मैं क्यों होऊं तार-तार
मैं क्यों रोऊं जार-जार

मेरे लिए क्यों कहीं माफी नहीं
क्यों मेरा इंसान होना काफी नहीं ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।